श्रीः

सनातन सत्कर्म्ममाला

प्रथम भाग

ऋजुस्तवमञ्जूषा

पाण्डेय उमापति दत्त शर्म्मा

द्वारा

संकलित

तथा

बाबू बाँकेलाल द्वारा प्रकाशित

और

श्री दक्षिणाचरण चक्रवर्ती

द्वारा

श्री. राम प्रेस में मुद्रित

तृतीय संस्करण]

[मूल्य प्रति पुस्तक ।/)

24. .06

"पक्षपातं विहायैव द्रष्टव्येयं कृतिर्बुधैः ।
मात्सर्य्य हीनैः सद्भाव्या धर्मरक्षेप्सुभिर्मुदा"

पुस्तक मिलनेका पता—

बाबू बाँकेलाल
नं० ६२ तूलापट्टी
बड़ा बाजार पोष्ट आफिस
कलकत्ता

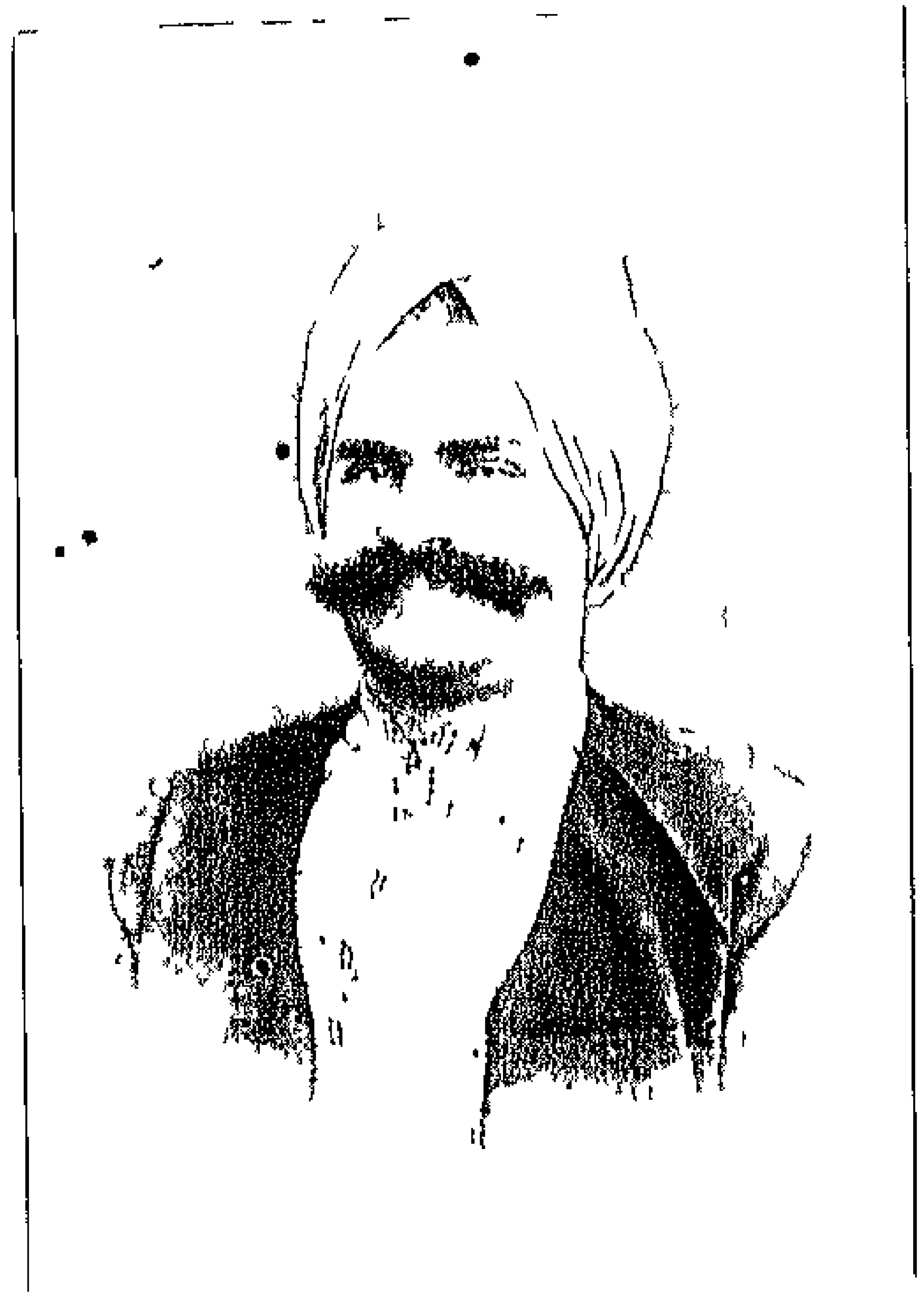

वक्तव्य

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्

मङ्गल भवन अमङ्गल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी॥
सिया राम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

धार्मिकों की दया से सनातन सत्कर्ममाला प्रथम भाग सत्कर्म मञ्जूषा का तीसरा संस्करण आज उनके सम्मुख रक्खा जाता है। इसका दूसरा संस्करण सज्जनों को बहुत पसन्द आया है। सरकारी टेक्सटबुक कमीटियों ने भी इसे छात्रों के उपयुक्त बताया है। इस उत्साह प्रदान के लिये उन्हें असंख्य धन्यवाद।

बड़ी सावधानी करने पर भी छापे की अशुद्धियाँ एवं अन्य त्रुटियाँ इस संस्करण में अपना स्थान पाकर प्रसिद्ध कवि की उक्ति चरितार्थ करती हैं —

है इन्साँ मुरक्कब सहव से खता
वह चूकेगा हरचन्द हो होशियार (अमन)

विनीत

उमापति दत्त

रामनवमी १९८३ वि०।

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण।	१
पञ्चदेव परिचय	"
पञ्चदेव प्रणाम	"
धर्म	३
भारत की श्रेष्ठता	४
धर्म में प्रमाण	५
धर्महीन मनुष्य पशु से भी नीच (हरिश्चन्द्र)	१८
मनुष्य की धर्म विमुखता (तुलसीदास)	"
अन्य अन्य प्राचीन सभ्य जातियों में धर्म का विचार	२०
धर्म की परिभाषा	"
धर्म का तीन रूप (आत्मा, संसार, परमात्मा, के सम्बन्ध में)	२१
स्वदेशभक्ति श्रेष्ठतर धर्म	२३
नित्यकर्म की कुछ जरूरी बातें	२७
सवेरे उठ तीन कुल्लाकर भूमिस्पर्श	"
जगदीश्वर का नाम लेना	"
सबसे पहले दहिना हाथ देखना	२८
शौच-मट्टी लगाकर शुद्धि करना तथा कुल्ला आदि करना	"
दन्तधावन विधि और मन्त्र आदि	२९
देहशुद्धि मन्त्र	३०
सूर्य्य, तुलसी, गौ को प्रातः प्रणाम मन्त्र	"
पञ्चदेव की भक्ति तथा एकता	३१
श्रीनारायण का प्रातःस्मरण	३२

श्रीगणेश ,, ,, ३३

श्रीदेवी ,, ,, ३४

श्रीसूर्य ,, ,, ३५

श्रीशिव ,, ,, ३६

स्नान के पहले कौन कौन पदार्थ खायी जा सकें ३७

स्नान, जलशुद्धि मन्त्र, स्नान मन्त्र ३८

गङ्गास्नान, स्नान से पूर्व शरीर में मृत्तिका लेपन की ४०

स्नान से पूर्वशरीर में गोबर लेपन की विधि एवं मन्त्र ४१

गङ्गास्नान मन्त्र ,,

गङ्गा ध्यान ,,

गङ्गा स्तोत्र ४३

गङ्गा प्रणाम ४४

शिखाबन्धन, भस्मधारण, चन्दनधारण, मन्त्र ४५

नयाजनेऊ धारण करनेका वो पुराना त्याग करनेका मन्त्र ४६

सूर्यार्घ, तुलसी प्रणाम स्नान, वो पत्तातोड़ने का मन्त्र ,,

विप्रपादोदक धारण करने का माहात्म्य तथा मन्त्र ४७

पूजा करने की विधि ४८

पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार पूजा विधि ,,

छत्तीस उपचार की पूजा विधि ४९

आसन शुद्धि मन्त्र ५०

फूल चढ़ाने की विधि ,,

फूल हाथ में लेकर प्रणाम करने का मन्त्र ५१

साष्टाङ्ग प्रणाम ,,

शंख में रखे हुए जल को शिरपर धारण करने का मन्त्र ५१

सिया का चरणामृत पीकर शिरपर धारण करने का मन्त्र	५१
खाने के बाद जरूर नाम लेने योग्य	५२
शयन करने के पहले रात को अवश्य स्मरण करने के योग्य	„
गोमाहात्म्य	५४
भारत महिमा	५७
श्रीगणेश—मङ्गलात्मक ५ श्लोक, ध्यान, आवाहन, स्तोत्र, प्रार्थना, प्रणाम, क्षमापण	६१
श्रीविष्णु— „ „ „	६४
श्रीशिव— „ „ „	७०
श्रीसूर्य्य— „ „ „	७५
देवी— „ „ „	७९
हालक्ष्मी स्तोत्र	८५
ता स्तोत्र	८८
ता, बड़े भाई आदि बड़ों की पूजा धर्मशास्त्र से	९२
की वन्दना	९५
की वन्दना	९६
की वन्दना	९७
—सदाचार संक्षेप भाषामें	९९
ति कर्म धर्मशास्त्र से	१००
ा का कर्म धर्मशास्त्र से	१०२
श्य का कर्म धर्मशास्त्र से	११२
सामान्य नीति के श्लोक, भाषा अर्थ सहित	११२
उपदेश	१२८
समालोचनायें	१
सम्पूर्ण पुस्तक की पृष्ठ संख्या	२१६

मंगलाचरण

हिरण्य गर्भ पुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञान स्वरूपिणे

आदित्यं गणनाथञ्च देवीं रुद्रञ्च केशवम् ।
पञ्चदैवत्यमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ १ ॥

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥ २ ॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ३ ॥

भूत्यालेपनभूषितः प्रविलसन्नेत्राग्निदीपाङ्कुरः
कण्ठे पन्नगपुष्पदामसुभगो गङ्गाजलैः पूरितः ।
ईषत्ताम्रजटाग्रपल्लवयुतो न्यस्तो जगन्मण्डपे
शम्भुर्मङ्गलकुम्भतामुपगतो भूयात् सतां श्रेयसे ॥ ४ ॥

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते, क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥ ५ ॥

(भाषा)—जगत् का प्रधान नेत्र स्वरूप, जगत् की उत्पत्ति पालन नाशके कारण, त्रिदेव स्वरूप, रजो गुण, तमो गुण, सत्व गुण धारण करनेवाले, ब्रह्मा विष्णु शिव स्वरूप, सूर्य्यको प्रणाम है ॥ १ ॥ हे गणनाथ! विघ्नके नाश करने वाले, देवताओं के प्रिय, लम्बे उदरवाले, कलाओं से पूर्ण, जगतके हितकारी, गजके समान सुँहवाले, वेद और यज्ञसे शोभित, पार्वतीके पुत्र आपको बार बार नमस्कार है ॥ २ ॥ हे देवि! धर्मात्माओं के घरमें लक्ष्मी, पापिओंके घरमें दरिद्रा, पण्डितोंके हृदयमें बुद्धि, सत्पुरुषों की श्रद्धा, अच्छे कुलमें उत्पन्न मनुष्यों की लज्जा, हो कर रहनेवाली आपको नमस्कार है आप संसार का पालन करें ॥ ३ ॥ जिनकी शरीरमें विभूति लगी है, नेत्रमें अग्नि की ज्वाला धधकरही है, कण्ठमें साँपों की माला सिरमें गंगाजल, और कुछ लाल जटा जूट, संसारमें मङ्गलसे भरे घड़े के समान शिवजी सदा कल्याण करें ॥ ४ ॥ वेदका उद्धार करनेवाले, जगत का उपकार करनेवाले, पृथ्वी को पाताल से निकालनेवाले, दैत्य (हिरण्य कशिपु) को फाड़नेवाले, बलिको छलनेवाले क्षत्रियों के नाश करनेवाले, रावण को जीतनेवाले, हल को धारण करनेवाले, दया को बढ़ानेवाले, म्लेच्छों को मूर्च्छित करनेवाले आप श्रीकृष्ण को प्रणाम है।

धर्म

विष्णुपुराण के द्वितीय अंश तृतीय अध्याय में भारतवर्ष का वर्णन करते हुए महर्षि पराशर अपने श्रद्धावान श्रोता मैत्रेय मुनि से कहते हैं कि "हे महामुनि ! सम्पूर्ण संसारमें केवल भारतवर्षही स्वर्ग और मोक्ष चाहनेवाले पुरुषों की कर्मभूमि है *। इसी स्थान से स्वर्ग मिलता है, पुरुष

---

* "कर्मभूमि" तथा "पुण्य की घटती बढ़ती" इन गूढ़ बातों का सविस्तार वर्णन सनातन सत्कर्ममाला के दूसरे भाग में दिया जायगा। और इस पौराणिक वचन को भली भाँति प्रमाणित कर दिया जायगा।

कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ॥ २ ॥
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात्प्रयान्ति वै ।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ॥ ४ ॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते ॥ ५ ॥
चत्वारि भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ॥ १९ ॥
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ॥ २२ ॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥ २३ ॥
गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥ २४ ॥

इसी स्थानसे मोक्ष पाते हैं तथा इसी स्थानसे पशु पक्षी की योनि में उत्पन्न होते हैं और नरक में जाते हैं। इसी स्थानसे स्वर्ग मोक्ष मध्य लोक तथा पाताल आदि लोकों में जाते हैं। दूसरे किसी भी स्थान में मनुष्यों के कर्मों की विधि नहीं है भारतवर्षही में धर्मकी घटती और बढ़ती होती है। अर्थात् यहीं पर सत, त्रेता, द्वापर, कलि ये चार युग होते हैं। जम्बूद्वीपके बीच भारतवर्ष ही श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है; इसके सिवाय दूसरे स्थान भोगभूमि हैं। हे साधु श्रेष्ठ मैत्रेय! जीवगण सहस्रों जन्मके पाप पुण्य बलसे कदाचित् इस भारतवर्ष में मनुष्य शरीर पाते हैं। देवता लोग इसी तरह गीत गाया करते हैं, कि जो लोग स्वर्ग और मोक्षके पथस्वरूप भारतवर्ष में जन्मपाते हैं वे हम-लोगों से भी अधिक धन्य हैं।"

तात्पर्य्य यह है कि जितने लोक, द्वीप वा वर्ष आदि स्थान हैं वहाँके निवासी केवल सुख या दुःख भोगनेके लिये उन २ स्थानों में जन्म पाते हैं किन्तु भारतवर्ष में इसलिये मनुष्यका शरीर मिलता है कि वह अपने कर्त्तव्य कर्मोंको शास्त्र * की रीतिसे संपादन कर संसारके अनिष्ट को बड़े २

---

* यह शब्द संस्कृत "शास्" धातु (जिसका अर्थ "सिखलाना" "एकाग्रता करना" है) से "त्र" प्रत्यय लगाकर बना है इसका अर्थ है वह विद्या जो उचित ज्ञान देकर कार्य्य की रीति सिखलाती है।

दुःखों से बचे और आगे २ अधिक २ अपना कल्याण साधन करे। वह कर्म क्या है ? कैसे हो सक्ता है ? उसका फल क्या है ? आदि प्रश्नों को हल करनेके लिये अर्थात् धर्मतत्त्व को जानने जताने और सेवन द्वारा प्राप्त करनेके लिये इतिहास, पुराण, स्मृति, धर्मशास्त्र, गृह्य सूत्र, श्रौतसूत्र, निरुक्त, आदि से होकर सीधी और निष्कण्टक शुद्ध सड़क बनी है जिसके द्वारा धर्मके तत्त्व तक ब्राह्मणादि अधिकारी सहज में हो पँहुच सक्ते हैं। निम्नलिखित श्लोक सनातनधर्मका

पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

स्तम्भ समझा जाता है जिसका अर्थ है—अठारह पुराण तथा वाल्मीकीय रामायण और महाभारत, गौतम कणाद पतञ्जलि और कपिलके चारो दर्शन, मीमांसा पूर्व्वोत्तर भेद से जैमिनि और व्यासके दो दर्शन, मनु याज्ञवल्क्य और अठारह अन्य स्मृति ये बीस पुस्तक धर्मशास्त्र, वेदके शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द ये छः अङ्ग धर्मके तथा विद्याके छः स्थान लिये जाते हैं जिदान चार वेद, छ वेदाङ्ग पुराण, न्याय, मीमांसा, और धर्मशास्त्र ये चौदह, विद्या और धर्मके स्थान नाम चोन हैं। इन्हीं चौदह में से सनातन धर्म उगा है। वेदके उपलक्षणार्थ होनेसे चारो उपवेद भी आजाते हैं। उपनिषद आदि भी इसीमें शामिल हैं सनातन

धर्म्मी लोग इन्हीं ग्रन्थों से विद्या और धर्म्मकी व्यवस्था मानते हैं। इसी व्यवस्था द्वारा प्राचीन महर्षि गण तथा सिद्ध महात्मालोगों ने परम पुरुषार्थ पाया है। उनके देखाये हुए पथ पर चलना हमारा कर्त्तव्य है जैसा कि यजुर्व्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषत् के ११ वें अनुवाक में गुरुजी अपने विनीत शिष्यको सिखलाते हैं कि "हे शिष्य यदि तुमको किसी कर्म्मानुष्ठान अथवा वर्णाश्रमाचार की कर्त्तव्यता में संदेह हो तो तुम अपने मन से उसका निवारण मत करो किन्तु वहाँ पर जो पूरा विचारशील, नित्यनैमित्तिक कर्म्मानुष्ठानमें तत्पर विश्वासपूर्वक वैदिक कर्म्म में निष्ठावान, रूक्ष भाषण क्रोध और आग्रहादि दोष शून्य, धर्म की कामना वाले शिष्ट ब्राह्मण हों जिस प्रकार वे उस कर्म्मानुष्ठान आचारादि का सेवन करें उस प्रकारहो तुमको कर्त्तव्य है अन्यथा नहीं।" महाभारत आदि धर्म्मग्रन्थों के देखनेसे इन बातों की अधिक पुष्टि होती है। इस महामान्य ग्रन्थके (जो पाँचवाँ वेद समझा जाता है) शान्तिपर्व्व मोक्षधर्म्म में व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवजीको उपदेश देते हुये कहा है * "हे पुत्र! जब कि सब शरीरादि को छोड़ कर तुमको इस संसारसे वेवश जाना

* यदा सर्व्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते।
अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वमर्थं नानुतिष्ठसि॥
अविश्रान्तमनालम्बमपाथेयमदैशिकम्।
तमः कान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि॥

ही है फिर तू अनर्थ में क्यों फँसा है ? अपने कर्त्तव्यका सम्पादन क्यों नहीं करता ? मरनेके बाद जिस रास्तामें तुझे जाना है उस में विश्राम करने का न कोई पड़ाव है, न कोई पकड़ने का सहारा है न मार्गमें जल है न कोई जाने की दिशा नियत है फिर महा अन्धकार मय शून्यमार्ग में तू सङ्गी साथी या राह दिखलानेवाले के बिना अकेला कैसे जायगा ? क्योंकि जब तू शरीर छोड़कर दूसरे लोक की यात्रा करेगा तब •तेरे पीछे २ यहाँ से कोई भी नहीं जायगा लेकिन सिर्फ पाप और पुण्य तेरे साथ पीछे २ जरूर जायँगे। केवल धर्म्मही मरने के बाद साथ देता है और सब प्रेमी जाति कुटुम्ब परिवार आदि यहीं पर साथ छोड़ देते हैं। मृत्युसे नित्य २ लोगोंको मरते देख कर बड़े २ दुःखों

नहित्वां प्रस्थितं कश्चित् पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वां यास्यन्तं मनुयास्यति ॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्व्वमन्यत्तु गच्छति ॥
मृत्युनाभ्याहते लोके कालेनापि च पीडिते ।
धर्मानिःश्रेणिमास्थाय धीमान् किञ्चित्समाचर ॥
सम्पतन्तीह आत्मानि कदाचिदिह मानवं ।
ब्राह्मण्यं लभते जन्तुस्तत्पुत्र परिपालय ॥
ब्राह्मणस्येह देहोऽयं न कामार्थाय जायते ।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्य चानन्तकं सुखम् ॥

से बचने के लिये धर्मरूपी सीढ़ी पर खड़ा होकर थोडा २ ऊपर को चढ़ो जहाँ पहुँचने पर मृत्यु, आदि के दुःख कदापि न सता सकेंगे। अनेक देहरूप पिंजड़ों में पड़ते पड़ते कभी इस मनुष्यके चोलारूप पिंजड़े में जीव ब्राह्मणका शरीर पाता है, हे पुत्र शुकदेव! तुम उस ब्राह्मणपन की रक्षा करो। विधाताने ब्राह्मणका शरीर काम सुख भोग और धनादि सम्बन्धी सुख भोग के लिये नहीं बनाया है किन्तु इस ब्राह्मण शरीरको क्लेश पूर्व्वक तप करनेके लियेही रचा है जिससे इस मट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश से बनी हुई देह को छोड़ देने पर जीवात्मा को सर्वोत्तम सुख प्राप्त हो।

इस विषय परनीतिकार ने एक गूढ़ार्थ भरा हुआ श्लोक कहा है जिसका भावार्थ यह है कि इस पृथिवी पर मनुष्यका शरीर पाना दुर्लभ है। यदि पूर्व्व सञ्चित पुण्यबल से मानुष चोला मिला भी तो पुरुष होना दुर्लभ है, पुरुष भी हुए तो क्या? ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न होना अत्यन्त दुर्लभ है, यदि असीम धर्मके प्रभावसे कहीं ब्राह्मण वंशमें जन्म भी लिया तो सद्गुण तथा विद्या होना दुर्लभ है, विद्वान होने पर भी

मानुष्ये सति दुर्लभा पुरुषता पुंस्त्वे पुनर्विप्रता।
विप्रत्वे बहु विद्यतातिगुणता विद्यावतोऽर्थज्ञता॥
अर्थज्ञस्य विचित्र वाक्य पटुता तत्रापि लोकज्ञता।
लोकज्ञस्य समस्त शास्त्र विदुषो धर्मेमतिर्दुर्लभा॥

शास्त्रों के तत्त्व को समझना और ग्रहण करना कठिन है, समझदार होकर फिर बोल चाल में निपुण होना अधिक दुष्प्राप्य है, यदि सुवक्ता भी हो गये तो लोक चातुरी दुर्लभ है, पर संसार चतुर और सब शास्त्रनिपुण पूर्ण पण्डित होकर भी धर्मनिष्ठ होना सब से अधिक दुष्प्राप्य है। इस श्लोक में एक के बाद जो दूसरी बात कही गई है वह एक दूसरे से अधिक दुर्लभ समझी जाती है।

बुद्धिमान सज्जन नीचे लिखे श्लोक को प्रधान लक्ष्य मानकर संसार के काममें प्रवृत्त रहते हैं। कर्म रूप गोरख धन्धे में उनका चित्त फंसा रहे पर कदापि इसका उपदेश नहीं भूलते। यदि इस श्लोक का तात्पर्य्य भूल जाय तो करुणावरुणालय जगदीश्वर की इस सृष्टि में कोई पुरुष क्या यथार्थ उन्नति कर सकता है? कदापि नहीं। मनुष्य मात्र को इस श्लोक के आदेश को शिरोधार्य्य करना चाहिये। क्या ही गूढ़ार्थसम्पन्न और लाभदायक इसकी शिक्षा है! यह कहता है कि बुद्धिमान* पुरुष विद्या पढ़नेमें और धन इकट्ठा करने में अपने को ऐसा ही समझे कि मैं कभी बूढ़ा नहीं

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।

* हमारे प्राचीन महर्षिगण "बुद्धिमान" की पदवी उन्हीं मनुष्यों को देते थे जो इस लोक और परलोक दोनों के साधन का तथा दोनों के कल्याण का काम करते थे जैसाकि कहा है — "यो लोकद्वयसाधिनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी"

होऊँगा और न कभी मैं मरूँगा, तथा धर्म करने में सदा याद रक्खे कि हमारे शिर पर हाथ फैलाये हुए वल्कि हमारे शिर के केश पकड़े हुए काल खड़ा है। तात्पर्य्य यह कि यदि विद्यार्थीका ऐसा खयाल होजाय कि मुझे तो बराबर जोना नहीं है थोड़े ही दिनों के वास्ते इस दुनिया में मुझे रहना है तो वह कभी कौवे की तरह दिन रात टायँ टायँ रटते रहना, वगुले की नाईं अपने पाठ पर सदा ध्यान रखना, कुत्ते की भाँति कम सोना, माता पिता, भाई बहिन आदि के लाड़ प्यार का सुख छोड़कर बचपन ही में उनसे दूर जा बसना, खाना थोड़ा और मार पीट डाँट डपट बराबर सुनते रहना, नङ्गीतलवार पर चलने की तरह गुरुसेवा का कठिन व्रत पालन करना, आदि छात्रावस्था का अनेक और जरूरी कष्ट न उठावें। उसी तरह यदि धनार्थी यह सोचता कि मैं लाखपति, करोड़पति, अर्व्वपति, वा असंख्यपति होने पर भी एक दिन खाली हाथ अकेला ही यहाँ से कूच कर दूँगा तो वह नानाप्रकार के यत्न तथा परिश्रम कर के धन इकट्ठा करने की चेष्टा कदापि न करता। इसी लिये उपदेशक कह रहा है कि विद्यार्थी अपने को अजर और अमर समझ विद्या लाभ में तन‘मन से तत्पर होवे। विद्या

अर्थ—जिस के बल लोक परलोक दोनों सिद्ध होते हैं उसी का नाम चातुरी या बुद्धिमानी है।

सदा रहनेवाली है। अगर यह पार्थिव शरीर छूट भी जायगा तो भी अमर आत्मा को उस उपार्ज्जित विद्या का संस्कार बना रहेगा दूसरे जन्म में थोड़े ही परिश्रम से अधिक विद्या हो जायगी इसी प्रकार प्रत्येक जन्म में पूर्व्व पूर्व्व संस्कार से अधिक अधिक विद्या होती जायगी और अन्त में विद्या-रूप होकर ज्ञान स्वरूप परब्रह्म में लीन होकर इस दुःख रूपी संसार में जन्मने और मरने से बचकर सदा के लिये परमानन्द भोगने लगेगा जिसका नाम मुक्ति है। ऐसी ही दशा धन की भी है। इसका भी संस्कार जन्मान्तर में फल देनेवाला होता है और इस संसार में भी धर्मानुसार विचार पूर्व्वक सत्कार्य्यों में धन व्यय करने से मनुष्य असीम पुण्यका भागी होता है। किन्तु ध्यान से विचारिये कि धर्म के विषय में उपदेशक क्या कहता है। वह सचेत करता है कि मृत्यु तुम्हारे शिरपर है गाफिल मत हो। बेखबरी छोड़ो। यह मत विचारो कि अभी सुख भोग ऐश आराम करलें पीछे देखा जायगा वा बुढ़ापे में धर्म कर लेंगे वा कुछ दिनों के बाद अथवा आज नहीं कल। ऐसा नहीं। धर्म करने में एक घड़ी भी टालमटोल न करो। कारण यह कि यदि आज ही मृत्यु तुम्हें कलेवा करलेवे तो धर्मशून्य तुम्हारी क्या दुर्दशा होगी? कोई * भी नहीं जानता कि कल किसकी

* न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति
अतः श्वः करणीयानि कुर्य्यादद्यैव बुद्धिमान्।

क्या होगा अतएव बुद्धिमान को उचित है कि काल के लिये धर्म्म कार्य्यों को न छोड़कर आजही कर डाले। इस लिये अपना कर्त्तव्य कर्म्म करने में कदापि अचेत नहीं होना चाहिये प्रातःकाल उठने के समय से सोने के समय तक जो करना उचित है उसको नित्य करना चाहिये। चतुर का यही काम है कि बीते * हुए दुःख पर खेद न करके और आने वाले सुखके अनुभव में अचेत न होकर रोज रोज का उचित कर्म्म रोज रोज समाप्त करता जाय मानो सदा मृत्यु के लिये निश्शङ्क और निडर तैयार रहै अपने धर्म्म खाता को मालिक परमेश्वर के पास जाँच कराने के लिये सदा सन्नद्ध रहै। परमेश्वर अपनी मरजी से जबो चाहैं बुलाकर धर्म्म का हिसाब बूझ लें कि हमने कितनी पूँजी में से कितने खर्च किये वा कितने बढ़ाए।

यदि मनुष्य अपने शरीर को आरामतलब बना ले तो वह अपने धर्म्म कर्म्म को कदापि नहीं कर सकेगा। जब वह अपने मन में यह दृढ़ कर लेगा कि बिना परिश्रम वा कष्ट सहे संसारी छोटे २ काम भी जब नहीं होते तो जन्मान्तर में भी सुख पहुंचानेवाला धर्म्म बिना कष्ट सहे कैसे हो जायगा? किसी प्रकार सम्भव नहीं। मनुष्य जितना ही

* गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्त्तमानेन कालेन वर्त्तयन्ति विचक्षणाः॥

अधिक धर्म कर्म को सुधारता है उतनाही अधिक उस को शरीर से कष्ट सहना पड़ता है। परन्तु इस थोड़े से शारीरिक कष्ट से मनुष्य को असीम लाभ होता है अर्थात् उसका तप बढ़ता जाता है। यह निश्चय जानना चाहिये कि आलसी और आरामतलबी का नतीजा बुरा होता है अर्थात् संसार के क्षणिक सुख के लिये अपने अनन्त सुख को नष्ट करना यथार्थ मनुष्य का काम नहीं है। धर्म करने और आलस्य छोड़ने का फल बहुत अच्छा है। काम, क्रोध, लोभ मोह, इर्ष्या द्वेष, आदि अनेक शत्रु हमारे शरीर के भीतर ऐसे हैं जो सदाही हम को धर्म से डिगाया करते हैं। इन काम क्रोधादि शत्रुओं के बारे में सतर्क करते हुए वेदव्यासजी अपने पुत्र शुकदेव जी से उपदेशार्थ महाभारत मोक्ष धर्म में कहते हैं * कि हे पुत्र! जैसे किसी को मारडालने के लिये चोर डाकू आदि शत्रु घेरे हों कि जब दाव लगे तभी इस को मार के माल सब छीन लें, वैसेही सतर्क, जागते हुए, नित्य तत्पर, मौका देखने वाले, काम क्रोधादि शत्रुओं के सब ओर से ताकते रहने पर तू बालक अज्ञानी क्यों नहीं

* अप्रमत्तेषु जाग्रत्सु नित्ययुक्तेषु शत्रुषु
अन्तरं लिप्समानेषु बालत्वं नावबुध्यसे ।
अपक्षयाय मासेषु जीर्यमाणे तथायुषि,
जीवितेऽभिपद्यमाने च किमस्थाय न धावसि ?

चेतता ? शत्रुओं के दिन गिनने पर और दिन दिन आयु के क्षीण होते जाने पर जगत में अपना जीवन चाहता हुआ तू इन काम क्रोध आलस्य आदि शत्रुओं के घेरे से उठकर क्यों नहीं भागता ? अपने कल्याणकारी कर्मों में क्यों नहीं लगता ? भूल में पड़े २ तुझे सैकड़ों जन्म बीत गए अब भी सचेत होके अपने हिताहित को क्यों नहीं सोचता ?

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण से लेकर इतर जातियों तक "धर्म" ही सब का एक मात्र सहायक है। अतएव यदि मनुष्य* वास्तव में अपना कल्याण वा सुधार करना चाहता है, यदि इस संसार में सुख भोग कर अटल कीर्त्ति छोड़ जाने की इच्छा रखता है, यदि नाना क्लेशों से पीड़ित संसारी जीवों का दुःख छोड़ाना और उनको सुख देने का यथार्थ उत्साह रखता है, यदि प्रमाद, आलस्य, काम, क्रोधादि शत्रुओं से (जो दिन २ अधोगति में गिराते

---

* मार्कण्डेय पुराण के भारत खण्ड वर्णन नामक ५७ अध्याय में लिखा है कि देवता लोग सदा यही चाहते हैं कि हमलोगों को पुण्यदेव कर्मभूमि भारतवर्ष में "मनुष्य" का शरीर मिले कारण यह कि जो कार्य्य देव वा दानव भी नहीं कर सकते वह "मनुष्य" कर सकता है—यथा।

देवानामपि विप्रर्षे सदैवैष मनोरथः ।
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ ।
मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः ॥

जाते हैं) अपना पल्ला छुड़ाना चाहता है, यदि बड़े २ दुःख विपत्तिओं से बचने का दृढ़ सङ्कल्प रखता है, यदि सर्व्वदा इच्छित सुख को सत्य हृदय से प्राप्त करना जरूरी समझता है, यदि ईश्वर देवता महर्षियों से मेल या दर्शन और आनन्द लाभ चाहता है, यदि ईश्वर देवतादि को संतुष्ट प्रसन्न कर उत्तम सुख भोग की कामना रखता है तो अपना धर्म्म किया करे। इस के सिवाय सुख प्राप्ति का दूसरा कोई रास्ता नहीं है कदापि नहीं है किन्तु "धर्म्म" ही सर्व्वोपरि इष्टसिद्धि का मार्ग है।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि " धर्म्म क्या है ? "

यह पहले कहा गया है कि धर्म्म सम्बन्धी बातों को निश्चय करने के लिये धर्म्मशास्त्र और पूज्यपाद महर्षियों के आचारही प्रमाण हैं, जैसा कि भगवान मनुने दूसरे अध्याय के छठे श्लोक में कहा है कि—चार * वेद, वेद जानने वालों की स्मृति और उनके ब्राह्मणादि रूपी शील, साधुओं के आचार, और आत्म प्रसन्नता यह सब धर्म्म के प्रमाण स्वरूप हैं।

शब्दों की व्युत्पत्ति, अर्थ, तथा शुद्ध व्यवहार के लिये व्याकरण ही प्रमाण माना जाता है। व्याकरण द्वारा "धर्म्म" की व्युत्पत्ति यों मानी जाती है- महर्षि कात्यायन के

---

* वेदोऽखिलो धर्म्ममूलं स्मृति शीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनां आत्मनस्तुष्टि रेव च॥

"अर्तिस्तु सुहु सृ धृ क्षि क्षु भा या वा पदि यक्षनीभ्यो मन्" इस उणादि १।१३८ सूत्र से "धृञ्" (धारण करना) धातु के बाद "मन्" प्रत्यय करनेसे "धर्म्म" शब्द सिद्ध होता है। इसका अर्थ है धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिरिति वा—यानी जो सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड को धारण करता है अर्थात् जिस के प्रभाव से यह संसार ठहरा है उसी सार पदार्थका नाम धर्म्म है।

धर्म्मका विशेष वर्णन महाभारत के शान्तिपर्व्व के ५४।७ अध्याय में और भगवद्गीता में मिलता है जिसे प्रत्येक हिन्दू सन्तान को पढ़ना चाहिये। अधिक विस्तार के भय से यहां नहीं दिया जाता है। परन्तु श्रुति स्मृति आदि का धर्म्म के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त है उसके सारांश का कुछ दिग्दर्शन मात्र कर दिया जाता है।

धर्म्म वह पदार्थ है जिसने सूत्ररूप से सम्पूर्ण सृष्टि को पकड़ रखा है। यहाँतक कि परब्रह्म परमेश्वर भी उसके बन्धन से अलग नहीं हैं। यह तो सब स्वीकार करते हैं कि परमात्मा दिशा और काल से आबद्ध नहीं हैं परन्तु परमात्मा को धर्म्म से अलग कोई नहीं मानता। धर्म्म में ही परमात्मा का निवास तथा गति है और परमात्मा में ही धर्म्म की पूर्ण स्थिति है। अग्नि जल आदि प्रकृति के पदार्थों से लेकर (जिनका धर्म्म जलाना तथा शीतल करना है) चैतन्य जीवों में भी सब का धर्म्म निश्चित है यहाँतक कि परमात्माको अपने गुणके अनुसार काम करना पड़ता है यानी धर्म्म का

पालन करना पड़ता है। यद्यपि वह सर्वशक्तिमान है तथापि धर्मसे विचलित कदापि नहीं होते और इसी से उनका नाम अच्युत भी है। अब यहां पर शङ्का यह उठती है कि आग का धर्म है उष्णता, जिसे वह कभी नहीं छोड़ती पर मनुष्य क्यों अपने धर्म के उलटा काम करता है? इसके उत्तर में यह स्मरण रखना चाहिये कि जड़ पदार्थों में यह शक्ति नहीं है कि वह अपने धर्म से तनिक भी इधर उधर हट सकें। उनका अपने धर्म के साथ नित्य सम्बन्ध है। उनके लिये जो अचल नियम परमात्मा ने बना दिये हैं वह सदा एकसा रहते हैं और उसीके अनुसार उन्हें सदा वर्तना पड़ता है। परन्तु मनुष्य को एक विलक्षण शक्ति दी गई है जिसकी प्रेरणा से वह अपने धर्म पथ से टल जाता है। यही विलक्षण गुण मनुष्य को स्वतन्त्र बना देता है और यह अनुभवशील विद्वानों का मत है कि मनुष्य जड़ पदार्थों की तरह विवश वा परतन्त्र हो अपना काम करने के लिये अचल नियम में प्रतिबद्ध नहीं है। इस शक्ति का नाम है "इच्छा"। मनुष्य के जितने काम हैं उनकी उत्पत्ति इसीसे है। यही शक्ति मनुष्यके सब कामों में अग्रसर रहती है और इसी की प्रेरणा से मनुष्य धर्मके अनुकूल वा प्रतिकूल काम कर सकता है कारण यह कि यह इच्छा स्वतन्त्र है परन्तु स्वतन्त्र होने पर भी अन्धी है अर्थात् इसको सत्य वा असत्य का विचार नहीं है। यही कारण है कि मनुष्य इस अन्धी शक्तिसे प्रेरित

होकर धर्म्म विरुद्ध कार्य्य में भी लग जाता है *। परन्तु परमात्माने मनुष्य को एक दूसरी शक्ति भी दी है जिसे विद्वान लोग विवेक कहते हैं। इस शक्ति से प्रत्येक मनुष्य (यदि चाहे तो) भले बुरे की पहचान कर सक्ता है। वह भली भांति समझ सक्ता है कि अमुक काम करने से मेरा मेरे परिवार वा मित्र वा देश का हित होगा अर्थात् यह काम इष्ट है और

---

* काशी के प्रसिद्ध कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने मनुष्य को धर्म्म विमुख कहते हुये पशु से भी नीच ठहराया है—

क्यों वे क्या करने जगमें तू आया था क्या करता है ?
गरभ बासकी भूलगया सुध मरनहार पर मरता है ?
खाना पीना सोना रोना और विषय में भूला है।
यह तो सब्बर में भी है तू मानुष बनि क्या फूला है ?
एक बात पशुओं में बढकर तुझ से पाई जाती है।
तू ज्ञानी हो पापी है हां पाप गन्ध नहिं आती है॥
जो विशेष था तुझ में पशु से उसे भूल तू बैठा है।
तो क्यों नाहक हम मनुष्य हैं इस गरूर में ऐंठा है ?
जान बूझ अनजान बना है देखी नहिं पतिआता है।
हरीचन्द अब भी हरिपद भज क्यों अवसरहिं गवांता है ?

परम भागवत गोसाईं तुलसीदास ने भी मनुष्य की धर्म्म विमुखता के सम्बन्ध में कहा है —

रामचन्द्र ! रघुनायक ! तुमसों हौं बिनती केहि भांति करौं ?
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं॥
परदुख दुखी सुखी परसुखतें संतशील नहिं हृदय धरौं

यह भी जान सक्ता है कि अमुक कामके करने से हानि है इसलिये वह काम अनिष्ट है। संसार में जितने काम हैं उनका कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य है। जिस कामका कुछ उद्देश्य नहो वह व्यर्थ कहलाता है। मनुष्य विवेक द्वारा प्रत्येक काम का उद्देश्य तथा फल विचार कर काम करता है (यदि करता न हो तो कर सक्ता है) इसी कारण यह अपने कर्म्मों के फल भोगने के लिये बाधित है। किन्तु जड़ पदार्थों तथा जीवों को अपने कार्य्य का उत्तर दाता नहीं बनना पड़ता।

जड प्रकृति में जो धर्म्म विद्यमान है उसका उद्देश्य जड पदार्थों को मालुम नहीं है। *उसका परिज्ञान रखनेवाला और अपनी इच्छासे प्रेरणा करनेवाला परमात्मा है इसलिये जड़ प्रकृति का जो धर्म्म है उसको धर्म्म न कहके उसे महर्षि लोग प्रकृति का अचल नियम कहते हैं। धर्म्म शब्द विवेकयुक्त

देखि आनकी बिपति परम सुख सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥
भक्ति बिराग ज्ञान साधन कहि बहुबिधि डहकत लोग फिरौं।
शिव सरबस सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरौं॥
जानत हूँ निज पाप जलधि जिय जलसीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर अवगुण सुमेरु करि गुण गिरिसम रजतें निदरौं॥
नाना बेष बनाइ दिवसनिसि परबित जेहि तेहि जुगुति हरौं।
एकौपल न कबहुँ अलोल चित हितदै पद सरोज सुमिरौं॥
जो आचरण बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि औटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु कृपा बिलोकनि गोपद ज्यौं भवसिन्धु तरौं॥

मनुष्य जाति के लिये प्रयुक्त होता है। अर्थात् धर्म्म शब्दके साथ साथ विवेक लगा हुआ है विवेक वा ज्ञान से अलग धर्म्मका विचार नहीं हो सक्ता है।

प्राचीन काल की दूसरी सभ्य जातियों में भी यह धर्म्म-सूत्र विद्यमान था यद्यपि उन लोगों ने इसका दूसरा दूसरा नाम रखा था। मिश्रवाले (The Egyptians) इसे मत (Religion) कहा करते थे। ईरानवाले (The Persians) इसे शुद्धता (Purity) कहते थे। चैलडी (Chaldea) के रहनेवाले इसे विज्ञान (Science)के नामसे पुकारते थे। यूनानी (The Greeks) इसके लिये सौन्दर्य्य (Beauty) ही शब्दको व्यवहृत करना उचित समझते थे। और रूमियों (The Romans) को इसका नाम नियम (Law) ही प्रिय था। परन्तु अति प्राचीन भारतवासी महर्षियों ने इस सर्व्वप्रधान गुण का एक ऐसा नाम रख दिया है जिससे इन सब अभिप्रायों का पूरा पूरा अर्थ निकलता है। वही भारत का प्यारा शब्द "धर्म्म" है। वह है क्या ? मनुष्य विवेक द्वारा जान सक्ता है कि धर्म्म क्या पदार्थ है। विवेक कहता है कि इस संसार में काम करने की सुन्दर तथा सहज रीति का नाम धर्म्म है अर्थात् इष्ट का ग्रहण तथा अनिष्ट का परित्यागपूर्व्वक अपने सब कामों को इस रीतिसे करना कि संसार में सुख शान्ति तथा यश मिले और साथ ही साथ आत्मा का सङ्ग वर्त्तमान शरीर से छूट जाने पर वह आत्मा इस दुःख सागर में फिर न

आवे प्रत्युत जिस अनन्त आत्मा का एक अंशमात्र है उसीमें जा मिले इसी कार्य्य रीति का नाम धर्म्म है।

संक्षेप से धर्म्म तीन रूपों में विचारा जाता है (१) अपने आत्मा के सम्बन्ध में (२) संसार वा दूसरों के सम्बन्ध में (३) परमात्मा के सम्बन्ध में। मनुष्य का अपने आत्माके सम्बन्ध का नित्यकर्म्म करना और इन्द्रियों को अपने वशमें रखना सच बोलना, विद्या पढ़ना, सद्ग्रन्थों का पाठ करना, चोरी नहीं करना, क्रोध नहीं करना, धीरता रखना जहाँ कहीं अच्छी बातों को देखना उन्हें सीखना तथा अनुकरण करना जैसा कि महर्षि वाल्मीकिने विष्णु अवतार श्रीरामचन्द्रजी को भक्त का लक्षण कहते हुये कहा था—अवगुण तजि सबके गुण गहहीं। विप्रधेनु हित संकट सहहीं॥ (तुलसीदास) आदि पहला धर्म्म है जिसके नहीं करने से महापातक होता है। आत्मज्ञान करके अपने स्वरूप को पहचानना भी इसी धर्म्म के अन्तरगत है। धीरता, क्षमा (सहजाना), शान्त भाव से रहना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों को अपने वशमें रखना, बुद्धि, विद्या, सच बोलना, क्रोध न करना, यह धर्म्म के दश लक्षण हैं यथा— धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म्म लक्षणम्॥ मनु

धर्म्म के दूसरे रूपमें पुत्रको माता पिता की सेवा करना, माता पिता का संतान पर उचित प्रेम रखना, भाई भाईमें परस्पर प्रेम भाव रखना, भाई बहन का प्रीति व्यवहार,

पड़ोसी का पड़ोसी से सहानुभूति रखना, अपने हित कुटुम्ब परिवार के साथ उचित बर्त्ताव करना, अपने से बड़े शिष्ट पुरुषों का श्रद्धा पूर्व्वक सम्मान करना, अपने कुटुम्ब परिवार का पालन पोषण करना, अपने पड़ोसी तथा स्वदेशी को पूरी सहायता करना, शिष्य की गुरू पर भक्ति, गुरू का शिष्य पर पुत्रवत् वात्सल्य, पति का अपनी सहधर्म्मिणी के साथ सरल प्रेम, स्त्री का ईश्वर तुल्य अपने पति से स्नेह तथा भक्ति, मित्र का अपने प्राण तुल्य सुहृद के साथ स्वच्छ निष्कपट प्रेम, दीन दुखियों पर दया, राजा का प्रजा पालन करना तथा प्रजा पर प्रेम रखना, प्रजा का सुनीति निपुण तथा प्रजा हितकारी राजा पर भक्ति, मालिक का भृत्य के साथ वर्त्ताव, और भृत्य का प्रभु भक्ति करना, हिंसा नहीं करना, किसी जीव को कुछ पीड़ा नहीं देना, शक्तिशाली होने पर अपने से छोटों के अपराधों को क्षमा करना, शत्रु के साथ नीति व्यवहार करना, सब के साथ व्यवहार में निष्कपट तथा स्वच्छ रहना, व्यापारी को अपने व्यापार में ईमान्दारी और कौल का विशेष विचार रखना, धनके लोभ से क्रय विक्रय में कभी बेईमानी अथवा ठगी नहीं करना, सदा स्मरण रखना कि बेईमानी का धन ठहरता नहीं और कुमार्ग में उड़जाता है वा दिवालिया बना देता है, अधिकार पाने पर न्याय को कभी न छोड़ना, आदि अनेक बातें मिली हैं।

मनुष्य जिस घरमें उत्पन्न होता है उस घर द्वारसे उसको

घनिष्ठ प्रेम हो जाता है। अपने घर में माता, पिता, भाई, बहिन आदि से प्रेम उत्पन्न होकर कुटुम्ब परिवार तक यह प्रेम की लता अधार पाके फैलने लगती है फिर तो घर बाहर पड़ोसिओं से इसके बाद सारे गाँववालों से प्रेम व्यवहार प्रारम्भ हो जाता है। और धीरे धीरे प्रस्फुटित तथा विस्तृत होते होते उसके गाँव जिला तथा देश के साथ प्रेम बन्धन सुदृढ़ हो जाता है। यह प्रेम स्वाभाविक है। मट्टी जल वायु अग्नि आदि से ही शरीर की उत्पत्ति मानी जाती है। जिस देश की मिट्टी जल वायु अग्नि से हिन्दू सन्तान का शरीर निर्मित हुआ है उस अति प्राचीन भारत भूमि से जिस भारतवासी का स्वाभाविक प्रेम न हो उसको बुद्धिमान लोग यथार्थ में मनुष्य नहीं कह सके हैं। जहाँ के घर द्वार खेत वन उपवन वृक्ष द्रुम लता नदी कूप तड़ाग आदि के रस उसकी नस नस रग रग में जीवनदाता रक्त रूपसे वह रहा है उस पैत्रिक सम्पत्ति भारत जननी से जिसका हृदय प्रेम नहीं रखता वह भारत सन्तान क्या धार्मीक कहला सक्ता है? कदापि नहीं। अतएव जैसे प्रत्येक मनुष्य का यह श्रेष्ठतर धर्म है अपने देश से, अपने देशी सबो चीजों से प्रीति रखना वैसेही प्रत्येक हिन्दूका यह कर्त्तव्य तथा श्रेयस्कर धर्म है यहाँ की रीति नीति मत सनातन हिन्दूधर्म अपने कुल, अपनी जाती, अपनी भाषा आदि का पालन करते हुए अपने देश की उन्नति देश का हित देश की रक्षा स्वदेश वासिओं

में परस्पर सहानुभूति सहायता स्नेह आदि का वर्त्ताव रखना। भारत नाम से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों को सम्मान की दृष्टि से देखना और उसकी श्रेष्ठता अक्षुण्ण रखना। इस रूपमें भी धर्म का अनुष्ठान करने से मनुष्य पुण्य भागी और अपने कर्त्तव्य का पालन करनेवाला समझा जाता है और यदि ऐसा न करे तो महा अधर्मी समझा जाता है।

धर्म का तीसरा रूप अत्यन्त आवश्यक है और श्रेष्ठतम कहलाता है। यही मनुष्य की परलोकप्राप्ति का एक मात्र मार्ग है। इस धर्म को जिसने नहीं किया उसने सब कुछ करके भी कुछ नहीं किया। मनुष्य अपने मनमें नाना प्रकार के तर्क वितर्क करके अन्तमें इसी सिद्धान्त पर आपहुँचता है कि यह संसार दुःख से भरा हुआ है इस में सच्चे सुख का लेश मात्र भी नहीं है। देखने में सुन्दर, सुनने में सुस्वर, चखने में मीठा, सुँघने में सुगन्धित, छूने में वा शरीर से शरीर मिलाने में स्निग्ध, आदि मालुम होना इन्द्रिय विलास कहलाता है और इस देहकी भिन्न भिन्न अवस्था मात्र है। पेट भर खाना, रात में गाढ़ी नींद लेना, अच्छे वन उपवनमें टहलना आदि भी शरीर की अवस्था ही हैं। परन्तु सच्चा सुख वा परमानन्द इन से भिन्न हैं। प्रत्येक मनुष्य इन्द्रिय तथा सच्चे सुख इन दोनों के भेद का सहज में परिज्ञान कर सकता है (यदि विचार पूर्व्वक इस विषय पर सोचे तो)। प्रायः देखने में आता है कि मनुष्य के पास विलास की सब

सामग्री रहते भी वह बहुधा बोल उठता है कि मुझे अच्छा नहीं मालुम होता, किसी चीज से मन को शान्ति नहीं होती, इन सब चीजों से सुख नहीं मिलता। इससे साफ मालुम होता है कि विलास की सब सामग्री रहते भी सुख नहीं हो सकता और विलास की एक चीज भी नहीं रहने से सुख हो सकता है। इन्द्रिय विलास तथा सच्चा सुख यह अलग अलग दो पदार्थ हैं एक कदापि नहीं। विलास शरीर से सम्बन्ध रखता है परन्तु सुख मनसे सम्बन्ध रखता है। शरीर चाहे कैसीही दशा में हो परन्तु मनकी शान्ति मनका आनन्द पृथक मालुम किया जाता है। यहाँ तक कि शरीर के हनीं रहने पर भी सुख का होना माना जाता है। वह सुख तब कहाँ रहता है ? अपने आश्रय आत्मा में। आत्मा का सुख के साथ सहज सम्बन्ध है। सत् चित् आनन्द परमात्मा का अंश होने के कारण जीवात्मा का गुण है सुख (न कि शरीर का)। यह सनातन नियम है कि एक तरह की चीज अपनी ही तरह की चीज को अपनी ओर खींचती है चुम्बक लोहे हो को खींचता है। उसी नियम से पार्थिव शरीर की प्रवृत्ति पार्थिव पदार्थों की ओर होती है और उन्हीं से उसे आराम वा विलास भी मिलता है परन्तु आत्मा की प्रवृत्ति परमात्मा की ओर रहती है और उसे शान्ति वा सुख कदापि नहीं प्राप्त होता जब तक वह परमात्मा से नहीं मिलता। तभी उसे शान्ति मिलती है और (सांसारिक

विचार से) अत्यन्त विपदावस्था में रहने पर भी आनन्द सागर की हिलोरा खाने लगता है। अतएव धर्म्म का प्रधान रूप यही है कि सांसारिक विषय वासनाओं से चित्त को हटा कर दिनमें एकबार भी आत्मा को परमात्मा के ध्यानमें लगाना*। जिस पुरुष के चित्त में यह बात भली भाँति नहीं बैठ जाती की एक सर्व्व शक्तिमान जगन्नियन्ता परमात्मा है जिसके सम्मुख एकबार मेरे सब कामों का विचार होगा और मुझे अपने धर्म्माधर्म्म का उत्तर दाता बनना पड़ेगा वह पुरुष कैसाहू प्रतापवान बलशाली वा बुद्धिमान हो पर वह यथार्थ उन्नति कदापि नहीं कर सक्ता। इसलिये धर्म्म का तीसरा रूप यह है यज्ञादिक कर्म्म करना पूजा करना, परमात्मा के सम्मुख उपासना करना वा रोना अपने नित्य के अपराधों की क्षमा माँगना और सच्चिदानन्द जगदीश्वरधर्म्म रूप का अनुकरण करते हुए नित्य प्रति धर्म्म पथ पर आगे बढ़ते जाना। इसके विषय में अधिक कुछ न कह कर नीचे के सारगर्भित दोहे पर ध्यान दिलाया जाता है "तन अतिथ्य सङ्गी धरम. प्रभु जग करता सोइ। तीन बात जो जानई, तासों खोट न होई॥" यही सिद्धान्तों का निचोड़ है।

---

* चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म्मः॥ जैमिनीसूत्र १।१।२।

नित्यकर्म्म की कुछ जरूरी बातें

(संक्षेप)

अङ्गिरा ऋषि कहते हैं कि प्रातः काल उठ कर प्रथम मुख शुद्धि के लिये तीन कुल्ला करें। यदि खाट से उठ कर मोरी आदि पर कुल्ला करनेको जाना पड़े तो पृथिवी पर पग धरते समय आगे लिखा स्मार्त्त मंत्र पढ़कर भूमि स्पर्श करें। और यदि उठकर खाट पर बैठे बैठे कुल्ला के योग स्थान हो तो वेहीं से प्रथम उक्त प्रकार मुख शोधन कर ईश्वर नामोच्चारण करने पश्चात् बिस्तर से उठते समय भूमि स्पर्श करें अर्थात् आगे वा पीछे पृथिवी पर पग धरने से पूर्व्व भूमि स्पर्श दहिने हाथ से नित्य नित्य किया करें --

समुद्र वसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णु पत्नि नमस्तुभ्य पाद स्पर्शं क्षमस्व मे ॥ *

मुख शुद्धि करके पहले परमेश्वर का नाम लेना चाहिये। श्रीकृष्णविष्णो ! मधुकैटभारे! भक्तानुकम्पिन् ! भगवन् ! मुरारे ! त्रायस्वमाम् केशव ! लोकनाथ ! गोविन्द ! दामोदर ! माधवेति संसारकूपे पतिते अगाधे मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते

* (भा०) समुद्र जिसका कपड़ा है। पर्वत जिसके स्तन हैं। और जो विष्णु की स्त्री है ऐसी पृथिवी देवीको प्रणाम करता हूँ हे पृथिवी आप मेरे पैर से लगने अपराध को क्षमा करें।

करावलम्बम् ममदेहि विष्णो ! गोविन्द ! दामोदर । माधवेति
जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि ।
समस्त भक्तार्त्ति विनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ *

इस प्रकार प्रातः काल उठकर मुख शुद्धि, भूमिस्पर्श तथा ईश्वर के नामों का उच्चारण करके दूसरे संसारी पदार्थों को देखने से पहले अपने दहिने हाथ को देखना चाहिये ।

इसके बाद जनेऊ को दहिने कान पर चढ़ाके मलमूत्र का त्याग करे। दिन में उत्तर को ओर रातमें दक्षिणको ओर सायं प्रातः संध्याओं के समय उत्तर को मुख करके मलमूत्र त्यागे। मलमूत्रकी इन्द्रियों की शुद्धि जल और मट्टी से करे। लिङ्गेन्द्रिय में एकवार जल मट्टी लगाकर धोवे ५ वार गुदाको मट्टी जल लगा लगा कर धोवे । गुदा और लिङ्गेन्द्रियकी शुद्धि सदाही वाम हाथ से करे। पीछे वाम हाथको दश वार मट्टी जल लगा लगा कर धोवे पश्चात् ७ वार दोनो हाथ में मट्टी लगाकर एक साथ धोवे और पाँव में एक एक वार मट्टी लगा

---

* (भा०) हे श्रीकृष्ण । विष्णु । मधुकैटभ के शत्रु । भक्तों के ऊपर दया करने वाले, भगवन् सुर नाम दैत्य के संहारक । लोक के स्वामी गोविन्द । दामोदर । लक्ष्मी के पति । केशव मेरी रक्षा करो ।

हे गोविन्द । दामोदर । माधव । विष्णु । मोहरूपी अँधेरे से भरे, संसार के सुख की इच्छारूपी कूप में मैं गिरा हूँ मेरी बाँह पकड़कर निकालो ।

हे जीभ । भक्तों के सब दुःख छुड़ानेवाले, मन को हरनेवाले, श्रीकृष्णके गोविन्द, दामोदर, माधव, इन नामों को सदा भज ।

कर धोवे। इतनी शुद्धि गृहस्थों के लिये इसकी दूनी ब्रह्म चारी को तिगुनी वानप्रस्थ को और चौगुनी संन्यासी को करनी चाहिये। रात्रिमें शौच जावे तो दिन की आधी शुद्धि करे, यदि मार्ग चलते में शौच जावे तो रात्रि से भी आधी और रोगी दशा में यथाशक्ति शुद्धि करे। आश्वलायनने कहा है कि टट्टी होनेके बाद बारह दफे, पेशाब करनेके बाद चार दफे, भोजन करने के बाद सोरह दफे, भूजा खानेके बाद आठ दफे, कुल्ला करना चाहिये। और कुल्ला बाईं ओर फेंकना चाहिये। इसके अनन्तर दातौन करे मनुष्य मुँह के न धोने से घबड़ाया सा रहता है इस कारण रोज मुँह को धोना और जीभी करना चाहिये। इससे शरीर नीरोग रहता है और साथ साथ पुण्य भी होता है।

आयुर्वेद ग्रन्थ सुश्रुतके चिकित्सा स्थानके अनागतबाधप्रश मनीयाध्याय में लिखा है कि नीरोग रहने के उपायों में प्रथम उपाय नियम से दातौन करना है। दातौन १२ अङ्गुल लम्बी कनिष्ठिका तुल्य मोटी हो कोमल हो गाँठवाली न हो और उसमें खोद भी न हो। दन्तरोगनिवारणार्थ बनाए चूर्णसे दाँतों का नित्य शोधन करे पर मसूढ़ोंमें अधिक न मले। चाँदी सुवर्ण वा टिनकी जीभीसे जीभको साफ करे। ऐसी दातौन और जीभी मुखकी नीरसता दुर्गन्ध सूजन और जकड़ आदि दोषोंको दूर करती है।

उक्त प्रकारसे दातौन करके बारह कुल्ला करके ओंकार

सहित मनसे गायत्री का स्मरण करे शिखा में गाँठ देवे बाद इस श्लोक रूप मन्त्र को पढ़कर दातौन के बाद अपने शरीर पर मार्जन करे।

ओं अपवित्रः पवित्रोवा सर्व्वावस्थां गतोऽपिवा
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः। *

इसके बाद आगे लिखे श्लोकोंसे सूर्य्य, तुलसी, गौ को प्रणाम करना।

आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्व्वन्ति दिने दिने।
जन्मान्तर सहस्रेषु दारिद्रं नोपजायते॥
नमो नमः सहस्रांशो ह्यादित्याय नमो नमः।
नमः पद्मप्रवोधाय नमस्ते द्वादशात्मने॥
नमो विश्वप्रवोधाय नमो भ्राजिष्णुजिष्णवे।
ज्योतिषे च नमस्तुभ्यं ज्ञानार्काय नमो नमः॥
महाप्रसाद जननी सर्व्वसौभाग्यवर्द्धिनी।
आधि व्याधि हरा नित्यं तुलसि त्वं नमोस्तुते॥ †

* (भा०)—जो मनुष्य शुद्ध अशुद्ध अथवा किसी हालत में होकर विष्णुका स्मरण करता है वह भीतर और वाहर सब प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

† (भा०)—जो रोज रोज सूर्य्यको प्रणाम करते हैं उनको हजार जन्मों में भी दरिद्रता नहीं होती॥ हे हजार किरणवाले, कमलों को विकाशित करनेवाले, बारह कला को धारण करनेवाले सूर्य्य आपको नमस्कार है॥ संसार को जगानेवाले सब चमकीली चीजों को जीतनेवाले, ज्ञान को प्रकाशित करनेवाले, प्रकाश स्वरूप सूर्य्य आप को प्रणाम है। हे तुलसी तुम बहुत प्रसन्नता को उत्पन्न करनेवाली सब

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एवच ।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥
गावो मे ऽग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

सूर्य्यादि देवताओं को नमस्कार श्रद्धाके साथ करके आगे लिखे अनुसार प्रातः स्मरण करें। जो लोग ईश्वर और देवताओं में एक समान भक्ति रखते वा रखना चाहते हैं उनको सब देवताओं की भक्ति का स्मरण करना चाहिये। और जिनको किसी एक देवता का विशेष इष्ट हो वे एकही का स्मरण करें। परन्तु श्रुति स्मृतियों के अनुसार यह अवश्य जानें और मानें कि एकही परमात्मा अनेक नाम रूपोपाधियों में अवस्थित है। सभी देवतादि नाम रूपों से एकही की भक्ति उपासना होती है। किसी एक देवता का इष्ट रखने वाला अन्य देवताओं को निकृष्ट वा साधारण न समझे व कहे तो अच्छा है। वास्तव में किसी एक देवता की उपासना करनेवाले भी उसी एक देवता को सर्वमय सर्वरूप सर्व शक्तिमान समझें तो यह ठीक सत्यही है परन्तु देवताओं

सौभाग्य को बढ़ानेवाली, मन और शरीर के दुख को छुड़ानेवाली हो आपको तीन प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्माकी पुत्री, और पवित्र श्रीमती सौरभेयी गौ को प्रणाम करता हूं। गाय सब मेरे आगे रहैं। गाय सब मेरे पीछे रहैं गाय सब मेरे हृदयमें रहैं। मैं गायों के बीच में रहूँ।

के उपासक देवताओं के विरोध को अपने काम में न लावें तभी अच्छा है। और प्रातः स्मरणको अपना कर्त्तव्य समझ इन श्लोकों को अवश्य कण्ठस्थ करलेवें।

प्रातः स्मरण

नारायण स्तुतिः—प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्त्तिशान्त्यै।
नारायणं गरुड़वाहनमब्जनाभम्॥
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुम्।
चक्रायुधंतरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥ १॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना।
पादारविन्द युगलं परमस्य पुंसः॥
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य।
पारायणप्रणवविप्रपरायणस्य॥ २॥

(भा०)—संसारी भयसे होनेवाले महादुःख की शान्ति के लिये गरुड़ जिनकी सवारी है जिनकी नाभी में कमल है चक्र जिनका हथियार है उन ग्राह से पकड़े हाथी को छुड़ानेवाले तथा नये कमल के पत्ते के तुल्य नेत्रवाले नारायणका मैं प्रातःकाल में स्मरण करता हूँ। वेद परायण प्रणवकी जप और स्तुति प्रार्थना में तत्पर ब्राह्मण के साथ नित्य रहनेवाले, इस नरकरूप संसार समुद्र से पार करनेवाले इन नारायण पुरुषोत्तम के दोनों उत्तम चरणकमलों में सिर झुकाकर मन, और वचनसे प्रातःकाल में नमस्कार करता हूँ। पूर्वके सब जन्मों में किये पापों से होनेवाले भय को नष्ट करने के लिये भक्तों को अभय देनेवाले उन विष्णु भगवान् नारायण की भक्ति करता हूँ जिन्होंने शङ्ख चक्र धारण करके ग्राह से पकड़े भक्त गजेन्द्र को घोरशोकग्रस्त विपत्ति से बचाया।

प्रातर्भजामि भजतामभयङ्करं तम् ।
प्राक् सर्व जन्म कृत पाप भयापहत्यै ॥
यो ग्राहवक्त्र पतिताङ्घ्रि गजेन्द्र घोर ।
शोकप्रणाशनकरोधृत शङ्खचक्रः ॥ ३ ॥
श्लोक त्रयमिदं पुण्यं प्रातः काले पठेत्सुयः ।
लोकत्रयगुरु स्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥

गणेशस्तुतिः—प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुम् ।
सिन्दूरपूर्ण परिशोभित गण्डयुग्मम् ॥
उद्दण्ड विघ्नपरिखण्डन चण्ड दण्डम् ।
आखण्डलादि सुरनायक वृन्द वन्द्यम् ॥
प्रातर्नमामि चतुरानन वन्द्यमानम् ।
इच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम् ॥
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिप यज्ञसूत्रम् ।

(भा०) अनाथ दीनों के बन्धु देवगणों के स्वामी सिन्दूर से अच्छे प्रकार शोभित हैं दोनों गाल जिनके, उग्र दण्डद्वारा बड़े प्रबल विघ्नों का ध्वंस करनेवाले और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं के भी पूज्य गणेश जी का प्रातःकाल में स्मरण करता हूं। चार मुखवाले ब्रह्माजी के भी पूज्य इच्छा के अनुसार सब वर देनेवाले सांप के जनेऊ वाले तोंदवाले खेलने में चतुर महादेव जी के पुत्र गणेश को अपने कल्याण के लिये प्रातःकाल प्रणाम करता हूं। भक्तों को निडर करनेवाले, भक्तों के शोक को नाश देनेवाले देवताओं के स्वामी अज्ञान रूप वन को भस्म करने के लिये प्रचण्ड अग्नि रूप, उत्साह को बढ़ानेवाले सुन्दर हाथी के सुंड के समान मुखवाले तथा शिवजी के पुत्र गणेशजी को मैं प्रातःकाल से भक्ति करता हूं।

भुक्तं विलास चतुरं शिवयोः शिवाय ॥ २ ॥
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक ।
दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ॥
अज्ञान कानन विनाशन हव्यवाहम् ।
उत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ॥

सूर्यस्तुतिः—प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यम् ।
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ॥
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादि हेतुम् ।
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्य रूपम् ॥ १ ॥

(भा०)—जिन सूर्य देवका मण्डल ऋग्वेद रूप जिनका शरीर यजुर्वेद रूप और जिनकी किरण सामवेद रूप हैं जो ब्रह्मा विष्णु शिव के साक्षात् रूप हैं, जिनका रूप अचिंत्य है उन सवितादेव के सर्वोत्तम तेज स्वरूप का मैं प्रातः स्मरण करता हूं। ब्रह्मा और इन्द्रादि देवता लोगोंने मन वाणी और शरीर से जिस तेजःस्वरूप की स्तुति और पूजा की है, जो पृथिवी के रसों को सोख कर बादल द्वारा जल देनेवाले वा रोकनेवाले हैं जो तीनों लोक की रक्षा करने में तत्पर तथा तीनो गुण (सत, रज, तम,) स्वरूप हैं उन सबको तारनेवाले सूर्यदेवको मैं प्रातः नमस्कार करता हूं। मैं उन अनन्त शक्तिवाले सर्वोपरि सवितादेव का प्रातःकाल भजन करता हूं कि जो अनेक पापों, शत्रुओं भय और रोगों को हरने वाले हैं तथा जो भूत भविष्य वर्तमान के सब रोगों की गणना रूप काल की मूर्त्ति हैं जो प्रभात समय गौओं के कण्ठ का बन्धन छोड़ानेवाले हैं और जो सब देवों के आदि देव हैं।

प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिः ।
ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च ॥
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतम् ।
त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिम् ।
पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ॥
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिम् ।
गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥
श्लोकत्रय मिदं भानोः प्रातः प्रातः पठेत्तु यः ।
स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परमसुखमवाप्नुयात् ॥

देवीस्तुतिः—प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभाम् ।
सद्रत्नवन्मकरकुण्डल हार भूषाम् ॥

(भा०) शरद ऋतुकी निर्मलचन्द्र किरणों की सी शोभा वाली, अच्छे चमकदार रत्न हीरा जिसमें लगे हों ऐसे सुवर्ण के कुण्डल तथा हारों के धारण करनेवाली स्वर्गीय दिव्य हथियारों से सज्जित अच्छे नीले इजार हाथ जिनके मनिष्ट हैं और लाल कमल की सी शोभावाले जिनके चरण हैं ऐसी परमेश्वरी भगवती का मैं प्रातः स्मरण करता हूं। महिषासुर शुम्भनिशुम्भ आदि दैत्यों के नाश करने में चतुर सब देवताओं का अनेक रूप देह मूर्त्ति अर्थात् सब देवताओं की शक्ति एकत्र हुई तथा ब्रह्मा इन्द्र रुद्र और मुनियों को अनेक, सुन्दर स्त्री आदिके रूप धारण करके मोहित करनेवाली ऐसी चंचल भगवती को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूं। संपूर्ण जगत का, धारण करने पापों का नाश करने और अपने भक्तों को अभिलषित वरदान देनेवाली तथा विष्णु भगवान परमात्मा की माया को पाकर संसार के बंधनों से अपने भक्तों को छुड़ाने वाली ईश्वरी ऐसी पराशक्तिको मैं प्रातःकाल भजन करता हूं।

दिव्यायुधोर्जितसुनील सहस्र हस्ताम्।
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि महिषासुर चण्ड मुण्ड ।
शुम्भासुर प्रमुख दैत्य विनाश दक्षाम् ॥
ब्रह्मेन्द्र रुद्र मुनिमोहन शील लीलाम्।
चण्डीं समस्त सुरमूर्त्तिमनेकरूपाम् ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि भजतामभिलाष दात्रीम् ।
धात्रीं समस्त जगतां दुरितापहन्त्रीम् ॥
संसार बन्धन विमोचन हेतुभूताम् ।
मायां परां समधिगम्य परस्यविष्णोः ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं देव्याश्चण्डिकायाः पठेन्नरः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥
शिवस्तुतिः—प्रातःस्मरामि भवभीति हरं सुरेशम् ।
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ॥

(भा०) संसारी मृत्यु आदिके भयको हरनेवाले देवताओं के स्वामी गङ्गाको धारण करने और वृषभ पर चढ़नेवाले अभयको देनेवाले खट्वाग और शूल जिन के हाथ में हैं ऐसे संसार रूप रोग को हरनेवाले अपूर्व औषधरूप ईश्वर शिवजी का मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूं । पर्वत में सोनेवाले पार्वतीजी जिनकी अर्द्धाङ्गिन हैं जो जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के कारण सब से पहले देवता हैं जिनने सबको जीतकर वशमें कर लिया है जो सबके स्वामी इच्छाधारी हैं उन संसार रूप प्रबल रोग को हरनेवाले अपूर्व औषध रूप ईश्वर शिवजी को मैं प्रातःकाल नमस्कारकरता हूं । जो वाक्यमें नाम रूप आदि भेदसे रहित तथा

खट्वाङ्ग शूल वरदाभयहस्तमीशम् ।
संसाररोग हर मौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि गिरिशंगिरिजार्ध देहम् ।
सर्गस्थिति प्रलयकारणमादि देवम् ॥
विश्वेश्वरम् विजित विश्वमनोऽभिरामम् ।
संसार रोग हर मौषधमद्वितीयम् ॥
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यम् ।
वेदान्तवेद्यमखिलं पुरुषं महान्तम् ॥
नामादिभेद रहितं षड्भावशून्यम् ।
संसार रोग हर मौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य, श्लोकत्रयं ये ऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दुःख जातं बहु जन्म सञ्चितं, हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भं

चतुर्विंशति मत में लिखा है—

इक्षुरापः फलं मूलं पयस्ताम्बूलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥

अर्थात् ऊख, जल, कन्द, मूल, फल, दूध, पान तथा दवा

छः प्रकार के अभाव से शून्य सम्पूर्ण महान पुरुषमय वेदान्त उपनिषद द्वारा जानने योग्य तथा जो अनन्त होने पर भी एक और सबके आदि कारण कल्याण स्वरूप हैं उस संसार रूप रोगको हरनेवाले अपूर्व औषध रूप शिवजी भगवान का मैं प्रातःकाल भजन करता हूँ ।

खाकर भी स्नान दानादि क्रिया कर लेना उत्तम है यानि इन का भक्षण धर्म्म नियम का बाधक नहीं है ।

स्नान ।

पहले सूर्य की ओर मुख कर हाथ पाँव धोवे और तीन कुश्चा करके संकल्प करे इसके बाद आगे लिखे मंत्र से जलको शुद्ध करे—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति
नर्म्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु *

इसके बाद निम्नलिखित श्लोकों को पढ़ता हुआ स्नान करे—

आपो नारायणोद्भूता: स्नाने वास्थायनं पुनः । †
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मराम्यहम् ॥

---

* (भा०) हे गङ्गा यमुना गोदावरी सरस्वती नर्मदा सिन्धु कावेरी आप आकर इस जलमें निवास करें ।

† (भा०) जल नारायण से उत्पन्न हैं और जलमें नारायण का निवास है इस कारण स्नान के समय नारायण का स्मरण करता हूं । तुम सब तीर्थों के राजा हो तुम्ही जगत के पिता हो मुझे पवित्र जल दो मैं मांगता हूं ! जिससे सब पाप छूट जाय । पवित्र पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि पवित्र नदी, स्नान के समय मेरे समीप आवें । नन्दिनी, नलिनी, सीता, मालती, मलापहा, विष्णपादाब्जसंभूता गङ्गा, त्रिपथ गामिनी, भागीरथी, भोगवती, जाह्नवी, त्रिदशेश्वरी, इन बारह नामों को स्नान करनेवाला मनुष्य जिस जिस जल में स्मरण करे मैं वहीं रहती हूं । (यह भक्त के प्रति गङ्गाजीका कथन है ।) हे गंगे ! विष्णु के पैर से निकली हो

त्वं राजा सर्व तीर्थानां त्वमेव जगतः पिता।
याचितं देहि मे तीर्थं सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नान काले सदा मम ॥
नन्दिनी नलिनी सीता मालतीच मलापहा।
विष्णु पादाब्ज सम्भूता गङ्गा त्रिपथ गामिनी ॥
भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी।
द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये ॥
स्नानोद्यतः पठेद्यत्र तत्रैव निवसाम्यहम्।
ॐ विष्णुपाद प्रसूतासि वैष्णवी विष्णु पूजिता।
पाहि नस्त्वेन सस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥
तिस्रः कोट्यर्द्ध कोटीच तीर्थानाम् वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्तु जाह्नवि ॥
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनोति च।
वृन्दा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता ॥
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोक प्रसाधिनी।

विष्णुने तुम्हारी पूजा की है तुम्हारा नाम वैष्णवी है इस कारण जन्मसे लेकर मरण तकके पापोंसे हमारी रक्षा करो। "वायुने कहा है गङ्गे! स्वर्ग, आकाश, और पृथिवी इन तीनोंमें सब मिला कर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं वे सब तुम में निवास करें। हे त्रिपथ गामिनी गंगा नन्दिनी, नलिनी, वृन्दा, पृथ्वी, सुभगा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरी, सुप्रसन्ना, लोकप्रसाधिनी इन तुम्हारे नामों को जो स्नान काल में स्मरण करते हैं उनके समीप तुम चली आओ।

क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्ति प्रदायिनी ।
एतानि पुण्य नामानि स्नानकाले प्रकीर्त्तयेत् ।
भवेत् सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथ गामिनी ॥

गङ्गास्नान ।

नदी आदि में स्नान करने की विधि बहुत विस्तृत है इसी कारण यहाँ नहीं दी गई है। नदी में स्नान के पूर्व्व शुद्ध मिट्टी हाथ में लेकर उसका तीन भाग करना। एक भाग बांये हाथ में लेकर कटि में लगाना हाथ धोकर फिर उसी हाथ से नीचे के सब अंगों में लगाना। हाथ धोकर तीसरा हिसा मिट्टी का दहिने हाथ से नाभीके ऊपर के अङ्गमें लगाना। मट्टी लगानेका यह मन्त्र है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ १ ॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
नमस्ते सर्व्वभूतानां प्रभवारिणी सुव्रते ॥ २ ॥
आरुह्य मम गात्राणि सर्व्वं पापं प्रमोचय ।
त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम् ॥ ३ ॥

(आ) अश्वों से, रथों से, और विष्णु से घिरी हुई रत्नों को धारण करनेवाली हे मिट्टी मेरे पाप को छुड़ाओ जो मैं ने किया है॥ १ ॥ हे सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाली पतिव्रता (पृथिवी) तुम अनेक बांहु धारण करनेवाले कृष्ण वराहसे निकाली गई हो तुमको प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ तुम मेरे शरीर पर चढ़कर सब पाप को छुड़ा दो तुम पाप का नाश कर दोगी तो मैं मोक्ष पाऊँगा।

इसके बाद गौ के गोबर को हाथ में लेकर मट्टीकी तरह तीन भाग करके नीचे के श्लोक पढ़ते पढ़ते लगावे :—

अग्रमग्र चरन्तीनामोषधीनां वने वने।
तासां वृषभ पत्नीनां पवित्रं काय शोधनम्।
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च पापं मे हर गोमय॥

(भा०) हे गोमय। (गोवर) वन वनमें औषधियों के अग्रभाग को खानेवाली वृषभों (बैलों) की पत्नी गायों के शरीर पवित्र करनेवाले तुम हो। इस कारण मेरे रोग शोक पाप का नाश करो।

गङ्गास्नान मन्त्र—विष्णुपादार्घ सम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि॥ १॥
श्रद्धया भक्ति सम्पन्ने श्रीमातर्देवि जाह्नवि।
अमृतेनाम्बुनादेवि भागीरथि पुनीहि माम्॥२॥

(भा०) हे! विष्णुके पैर के जल से निकली, स्वर्ग मर्त्य, पाताल में चलनेवाली, धर्मनदी ऐसा प्रसिद्ध नामवाली जह्नु मुनिकी कन्या, गङ्गा! तुम मेरे पापों को नष्ट करो। हे श्रद्धा भक्ति से भरी भगीरथ से लाई हुई, जह्नुकी लड़की गङ्गा देवी! अपने अमृतके समान मीठे जलों से मुझे पवित्र करो।

गङ्गाध्यानम—चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च सर्व्वावयवभूषिताम्।
रत्नकुम्भां सिताम्भोजां वरदामभयप्रदाम्॥
श्वेतवस्त्रपरीधानां, मुक्तामणिविभूषिताम्॥ १॥
सुरूपां चारुनेत्राञ्च चन्द्रायुतसमप्रभाम्।
चामरैर्वीज्यमानान्तु श्वेतच्छत्रोपशोभिताम्॥ २॥
सुप्रसन्नां सुवदनां करुणार्द्र निजान्तराम्।
सुधाप्लावितभूपृष्ठाम् आर्द्र गन्धानुलेपनाम्॥ ३॥

त्रैलोक्यनमितां गङ्गां देवादिभिरभिष्टुताम् ।
दिव्यरूपधराञ्चापि दिव्यमाल्यानुलेपनाम् ॥ ४ ॥

(भा०) चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली जिनके सब शरीर शोभित हैं रत्न का घड़ा हाथमें धारण करनेवाली सुफेद कमल का लगनेवाली पर और अभयदान करनेवाली सुफेद वस्त्र पेन्हनेवाली मोती की माला धारण करनेवाली। सुन्दर रूपवाली, सुन्दर नेत्रवाली, अगणित चन्द्रमा के समान तेजवाली, जिनकी दोनों तरफ चौंर हिल रहे हैं और सिर पर सुफेद छाता लगा है। प्रसन्न, सुन्दर मुंहवाली, जिनके हृदयमें कृपा भरी है जिन्होंने पृथिवीको अमृत से सींचा है जिनके शरीरमें गीला चन्दन लगा है। तीनों लोकसे प्रणाम के योग्य, देवता सब जिनकी स्तुति करते हैं, जिनका रूप परमपवित्र है जिनके शरीरमें सुन्दर माला और चन्दन शोभित है ऐसी गङ्गाजी हैं।

गङ्गास्तोत्रम्—मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि ।
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये ॥
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिसुत्प्रेङ्खतः ।
त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥१॥
त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरम् ।
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः ॥
नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारणत्
कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥
उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा ।
वाराणस्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः ॥
मत्वन्यत्रप्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रम् ।
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः ॥ ३ ॥

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितम्।
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचिभिरान्दोलितम्
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा।
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥४॥
अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णोः।
मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला ॥
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः।
क्षयितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥ ५ ॥
एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलता-
छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शंखेन्दुकुन्दोज्ज्वलम् ॥
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुंगस्तनास्फालितम्।
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥६॥
गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥ ७ ॥
पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि,
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।
झङ्कारकारि हरिपादरजोपहारि,
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥ ८ ॥
गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते,
वाल्मीकिनाविरचितं शुभदं मनुष्यः।
प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपंकमाशु,
मोक्षं लभेत्पतति नैव नरो भवाब्धौ ॥ ९ ॥
इति गङ्गाष्टकम्।

प्रणाम—सद्यः पातकसंहन्त्री सद्यो दुःख विनाशिनी ।
सुखदा मोक्षदा गङ्गा गङ्गैव परमागतिः ॥ १ ॥
नमामि गङ्गे तव पादपङ्कजं, सुरासुरै र्वन्दितदिव्यरूपम् ।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं, भावानुसारेण सदा नराणाम् ॥
क्षमापणम्—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत् ।
तत्सर्व्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ २ ॥

(भा०) हे पार्वती की सौति, पृथिवी की शृङ्गार करनेवाली माला, स्वर्गपर चढ़नेवालों की पताका, भागीरथी मा ! आपकी प्रार्थना करता हूं कि तुम्हारे तीरपर रहते, तुम्हारे जलको पीते, तुम्हारी लहरों को देखते, तुम्हारे नामों को स्मरण करते, और तुम्हारेही तरफ टकटकी लगाए हुए मेरा शरीर छूटे ॥१॥ हे नरक का नाश करनेवाली गङ्गा तुम्हारे तीरपर वृक्षों के खोखलों (घोसलों) में चिड़िया होकर रहना अच्छा, और तुम्हारे जलमें मछली या कछुआ बन कर रहना अच्छा, किन्तु दूसरी जगह मतवाले हाथियों के झुंड के घण्टाओं के घोर टनटना-हटसे डरी सम्पूर्ण शत्रुओं की स्त्रियों के विनय से प्रशंसा पाए हुए राजा होना अच्छा नहीं ॥२॥ काशीमें गङ्गाके तीरपर जन्म मरणों के दुःखों को न सहने-वाला बैल चिड़िया घोड़ा हाथी होय । पर दूसरी जगह वेश्याओं के सदा कंगन की झनकार से मिले चौंरों से जिनकी हवा की जाती है ऐसा राजा न होय ॥३॥ हे तीन मार्ग (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल,) से चलनेवाली परमेश्वरी गङ्गा! मेरे शिरपर देवताओं की स्त्रियां अपने हाथों से सुन्दर चौंर ढुरा रही हैं ऐसी अवस्था से स्वर्ग में जाकर—कौवे जिसको अपने चोंचों से नोच रहे हैं, कुत्ते जिसको खारहे हैं गीदड़ जिसको घेर रहे हैं, जिसको गङ्गाजी की धारा हिला रही है, हिलते हिलते तीर में आ लगाहै फिर जिसको गङ्गकी लहरों ने डुलाकर बीचमें कर दिया है ऐसी हालत में अपने शरीरको कब देखूंगा? ॥४॥ विष्णु (भगवान)

की चरण कमलों की नई कमल डंडीसे निकले श्वेत सूतकी डोरी, शंकरके शिरकी मालतीके फूलकी माला, मोक्षकी लक्ष्मी की विजय पताका, और कलियुगके सब पापों का नाश करनेवाली गङ्गाजी की जय हो, वह हम लोगों का पालन करें ॥५॥ ताल तमाल साल सरल आदि वृक्षों की पत्ती लताओं से छाया हुआ, सूर्यकी गरम किरणों से विहीन, शंख चन्द्रमा और कुन्दके फूल के समान सुफेद, गन्धर्व देवता सिद्ध और किन्नरों की स्त्रियों की ऊंची छातियों से कंपाया, और मल रहित गङ्गाजीका यह जल मुझे स्नान के लिये रोज रोज मिले ॥६॥ सुन्दर, विष्णु के चरणों से गिरा, शिव के सिर पर रहनेवाला, गङ्गाजी का जल मुझे पवित्र करे ॥७॥ पापोंका नाशनेवाली पापों का शत्रु, तरङ्ग को धारनेवाला, हिमालय की गुफाओं का फाड़नेवाला, झंकार शब्द को करनेवाला, विष्णु के पदकी धूलिको धोनेवाला, कल्याण देनेवाला, गङ्गाजी का जल सदा पवित्र करे ॥८॥ प्रातःकाल जो मनुष्य स्थिर होकर वाल्मीकि ऋषि के बनाये, कल्याण देनेवाले गङ्गाष्टकका पाठ करता है वह शरीर में लगे कलिकाल के पापों को धोकर शीघ्रही मुक्तिको पाय फिर इस संसार रूप समुद्र में नहीं गिरता ॥९॥

महर्षि वाल्मीकि का बनाया गङ्गाका अष्टक समाप्त ।

शीघ्रही पापका नाश करनेवाली, शीघ्रही दुःख नाश करनेवाली, सुख-देनेवाली और मोक्ष देनेवाली, गङ्गा हैं। गङ्गाही उत्तम गति हैं ॥१॥ हे गङ्गा! देव और दैत्यों से वन्दित, और दिव्य रूप है जिसका ऐसे तुम्हारे चरण कमलों को प्रणाम करता हूं। तुम मनुष्यों को भक्ति के अनुसार सदा भोग और मोक्ष देती हो। हे देवी! जो अक्षर पद अथवा मात्रा छूट गया हो उसको क्षमा करो। और हे परमेश्वरी! प्रसन्न रहो।

स्नानके बाद स्वच्छ वस्त्र धारण करके शिखा बांधे, तिलक धारण करे, सुगन्धित माला धारण करे यथा—

शिखाबन्धनम्—ऊर्द्ध्वकेशि विरूपाक्षि मांसशोणित भोजने।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये चामुण्डेह्यपराजिते ॥

भस्मधारणविधि—प्रातः ससलिलं भस्म मध्याह्ने गन्धमिश्रितम्।
सायाह्ने निर्जलं भस्म एवं भस्म विलेपयेत्।

भस्मधारणमन्त्र—वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च।
अतस्त्वां शिरसा वन्दे विभूते भूतिदा भव॥

चंदनधारणमन्त्रम्—कान्तिं लक्ष्मीं धृतिं सौम्यं सौभाग्यमतुलं मम।
ददातु चन्दनं नित्यं सततं धारयाम्यहम्॥

अन्यच्च—केशवानन्द गोविन्द वराह पुरुषोत्तम।
पुण्यं यशस्यमायुष्यं तिलकं मे प्रसीदतु॥

यज्ञोपवीतधारण

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

(भा०) बड़ा पवित्र, और पहले समर्थ ब्रह्माके साथ उत्पन्न, आयुबल बढ़ानेवालों में प्रधान यज्ञोपवीत को धारण करो। यज्ञोपवीत तेज को बलको बढ़ाता है।

यज्ञोपवीतत्याग

यज्ञोपवीतं यदि जीर्णवन्तं, विद्यादिवेद्यं परब्रह्मसत्त्वं।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं विसृजस्तु तेजः॥१॥

(भा०) विद्या आदि से जानने के योग्य, परब्रह्मका बल रूप आयुर्बल के बढ़ाने वालों में प्रधान और स्वच्छ यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहरो। यदि वह पुराना होजाय तो उसको उतार दो। जिससे तुम्हारा तेज बढ़े।

सूर्यार्घ्य मन्त्रः—एहि सूर्य्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्तं गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

(भा०) हे हजार किरणको धारनेवाले तेज के समूह जगत के स्वामी दिन को बनानेवाले सूर्य मुझ भक्त पर कृपा कीजिये और इस अर्घ को लीजिये।

तुलसीप्रणाम—महाप्रसाद जननी सर्व्वसौभाग्यवर्द्धिनी।
आधिव्याधिहरा नित्यं तुलसि त्वं नमोऽस्तु ते ॥१॥
वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि सत्यवत्यै नमो नमः।

(भा०) हे तुलसी तुम बड़ी प्रसन्नता देनेवाली सब सम्पत्तिकी बढ़ानेवाली मन तथा देह के दुःखों को नाशनेवाली हो तुमको नमस्कार है॥ हे विष्णु में भक्ति देनेवाली तुलसी तुम विष्णुकी प्यारी हो! पतिव्रता हो वृन्दा तुम्हारा नाम है तुमको नमस्कार।

तुलसीस्नान—गोविन्दवल्लभां देवीं भक्तचैतन्यकारिणीम्।
स्नापयामि जगद्धात्रीं विष्णुभक्तिप्रदायिनीम्॥

(भा०) भक्तों का ज्ञान देनेवाली विष्णु में भक्ति बढ़ानेवाली, जगत् को धारण करनेवाली गोविन्द (विष्णु) की प्यारी देवी (तुलसी) को स्नान कराता हूं।

तुलसीचयन—तुलस्यमृतनामासि सदा त्वं केशवप्रिया।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ॥१॥
त्वदङ्गसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि ॥२॥

(भा०) हे सुन्दरी तुलसी तुम विष्णुकी सदा प्यारी हो तुम्हारा नाम "अमृता" है विष्णुके लिये तुम्हारे पत्तों को तोड़ता हूं। तुम मुझे वरदान दो। हे कलियुगके पापों का नाश करनेवाली और पवित्र देहवाली (तुलसी) तुम ऐसा करो जिससे तुम्हारे ही पत्तों से मैं विष्णुकी पूजा करूं।

विप्रपादोदकधारण मन्त्र

ब्रह्माण्डोदरमध्येतु यानि तीर्थानि सन्ति वै।
तानि सर्व्वाणि तीर्थानि सन्ति विप्र पादोदके ॥१॥

विप्रपादोदकं पीत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी
तावत् पुष्करपात्रेण पिबन्ति पितरोदकम् ॥२॥

(भा०) ब्रह्माण्ड के बीचमें जितने तीर्थ हैं वे सब तीर्थ ब्राह्मण के चरण के धोए जलमें रहते हैं। जो ब्राह्मण के पैर के धोए जलको पीता है उसके पितरलोग जब तक पृथिवी रहती है तब तक कमल के पत्ते से जल पीते हैं (अर्थात् बहुत तृप्त रहते हैं)।

पूजनप्रकार—ध्यात्वाप्रणवपूर्वन्तु देवताश्च पृथक् पृथक्।
नमस्कारेण मन्त्रेण पुष्पाणि तु निवेदयेत्॥
ॐकारादिसु संयुक्तं नमस्कारान्तकीर्त्तितम्।
स्वनाम सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते।
अनेनैव विधानेन गन्धं पुष्पं निवेदयेत्।
एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्ट क्रमेणतु॥ (ब्राह्म)

(भा०) पहले अलग अलग देवताओं का प्रणवके साथ ध्यान करे पीछे नमस्कार के मन्त्र से फूल रक्खे। सब के नाम में "ओं" कार का और अन्तमें "नमस्कार" का उच्चारण करने से मन्त्र बनजाता है। (जैसे "ओं बुधाय नमः" इत्यादि)।

इसी प्रकार से चंदन पुष्प आदि चढ़ावे। हरएक देवता को इसी बताए क्रमसे पूजा करे।

पञ्चोपचार पूजा—ध्यानमावाहनञ्चैव भक्त्या पञ्च निवेदनम्।
नीराजनं प्रणामश्च पञ्चपूजोपचारकाः।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यः पञ्च ते क्रमात्॥

(भा०) पाँच उपचार से पूजा करनेवाला मनुष्यध्यान आवाहन आर्ती और प्रणाम करे। चन्दन फूल धूप दीप नैवेद्यको क्रमसे देवता को अर्पण करे।

अर्घ्यं पाद्यं चाचमनं स्नानं वस्त्रनिवेदनम्
गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥

(भा०) अर्घ पाद्य आचमन स्नान वस्त्र चन्दन फूल धूप दीप नैवेद्य ये क्रम से पूजा के दश उपचार हैं

षोडशोपचार—आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्कार्पणं स्नानं वसनाभरणानि च ॥
सुगन्धः सुमनोधूपो दीपो नैवेद्य मेवच ।
माल्यानुलेपने चैव नमस्कारोविसर्ज्जनम् ॥

(भा०) ज्ञानमाला में लिखा है कि आसन स्वागत (स्तुति) अर्घ पाद्य आचमन मधुपर्कस्नान कपड़ा गहना चन्दन फूल धूप दीप नैवेद्य माला अनुलेपन (अतर फुलेल आदि) नमस्कार विसर्जन ये पूजाके सोलह उपचार हैं ।

आवाहनासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
स्नानं वस्त्रोपवीतं च गन्धमाल्यादिभिः क्रमात् ।
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं नमस्कारं प्रदक्षिणाम् ।
उद्वासनं षोडशकमेवं देवार्चने विधिः ॥

(भा०) नारद देवका वचन है कि आवाहन आसन पाद्य अर्घ आचमन स्नान वस्त्र जनेऊ चन्दन पुष्प धूप दीप नैवेद्य नमस्कार प्रदक्षिणा विसर्जन ये सोलह उपचार देवताओं की पूजन की हैं ।

अष्टत्रिंशदुपचार—अर्घ्यं पाद्यमाचमनं मधुपर्कमुपस्पृशम् ।
स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचामञ्च चोपवीतकम् ॥
पुनराचमनं भूषादर्पणालोकनं ततः ।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यञ्च ततः क्रमात् ॥

पानीयं तोयमाचामो हस्तवासस्ततः परम्।
ताम्बूलमनुलेपश्च पुष्पदानं ततः पुनः॥
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं स्तुतिं चैव प्रदक्षिणाः।
पुष्पाञ्जलिनमस्कारावष्टत्रिंशत्समीरिताः॥

(भा०) अर्घ पाद्य आचमन मधुपर्क हाथ पोंछना स्नान आरती वस्त्र आचमन जनेऊ आचमन गहना आइना (शीशा) चन्दन फूल धूप दीप नैवेद्य जल आचमन हाथपोंछी (माफी) पान अतर फूलकी माला गाना बाजा नाच स्तुति प्रदक्षिणा पुष्पांजलि (फूल आगे छींटना) प्रणाम ये अडतीस ३८ प्रकार के पूजाके उपचार हैं।

आसनशुद्धि मन्त्र—ॐ पृथ्वित्वया धृतालोका देवित्वं विष्णुनाधृता।
त्वञ्च धारय मां देवि पवित्रं कुरुचासनम्॥

(भा०) हे पृथिवी देवी तुम संसार को धारण करती हो तुमको विष्णु धारण करते हैं तुम मुझको धारण करो और आसन पवित्र करो।

पुष्पार्पणप्रकारः—मध्यमाऽनामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत्।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यान्तु निर्माल्यमपनोदयेत्।

(भा०) मध्यमा (बीचकी अङ्गुली) और अनामिका (कनिष्टिका और मध्यमा के बीचवाली अंगुली) के बीचमें फूल को पकड कर देवता पर चढावे और अंगूठा और तर्जनी (अंगूठा और मध्यमा की बीचकी अंगुली) से चढे हुये फूल को उतारे।

पुष्पयुक्तोनमस्कारः—नाना सुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाणपरमेश्वर॥

(भा०) इस समय के उत्पन्न अनेक सुगन्धयुक्त फूलों से पुष्पाञ्जलि मैंने आपको दी है लीजिये।

साष्टाङ्गप्रणामः—उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥
अन्यच्च—कूर्मवच्चतुरः पादाः शिरस्तत्रैव पञ्चमम्।
मनोबुद्ध्यभिमानैश्च प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥

(भा०) छाती शिर नेत्र मन वचन पैर हाथ जांघ इन आठों अङ्गोंसे एक साथ प्रणाम करने को साष्टांग कहते हैं। कछुएके समान चारो पैर (अर्थात दोनों हाथ और दोनों पैर जोड़कर एकट्ठा करे) उसी जगह पर पाँचवा अंग शिरको रखे और मन बुद्धि अभिमान इन आठोंसे प्रणाम करने को अष्टांग अथवा साष्टांग प्रणाम कहते हैं।

शंखमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि।
अङ्गलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥

(भा०) शंखमें रखा हुआ और विष्णु के ऊपर घुमाया हुआ जल यदि शरीरमें लगे तो वह जल ब्रह्महत्याको छुड़ावे। इस मन्त्र से शंखमें रखा हुआ जल अपने शिर पर चढ़ावे।

विष्णुपादोदकधारण—कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामार्त्तिनाशन।
सर्व्वपापप्रशमनं पादोदकं प्रयच्छ मे॥ १॥
अकालमृत्युहरणं सर्व्वव्याधि विनाशनम्।
विष्णुपादोदकं पीत्वा सिरसा धारयाम्यहम्॥ २॥

(भा०) हे भक्तों के दुःख नाश करनेवाले महाबाहु (अर्थात बड़ी बाहवाले) श्रीकृष्ण सब पाप छुड़ानेवाला पादोदक (अर्थात् पैरका धोया जल वा चरणामृत) मुझे दीजिये। अकाल मृत्यु को हरण करने वाले (अर्थात पेड़ पर से गिर आगसे जलकर पानीमें डूबकर सापके काटने आदिसे मरजानेको अकाल मृत्यु कहते हैं। उसका नाश करनेवाले चरणामृतको जो पीते हैं उनको अकाल मृत्यु नहीं

होती) सब रोगोंको छुड़ानेवाले विष्णुके पैरको धोए हुये जल (चरणामृत) को पीकर शिर पर चढ़ाता हूँ।

भोजनके बाद स्मरण योग्य

अगस्त्यं कुम्भकर्णञ्च शनिञ्च वडवानलम्।
आहारपचनार्थाय स्मरेद्भीमञ्च पञ्चमम् ॥१॥
आतापी भक्षितो येन वातापी च निपातितः।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥२॥
इत्युक्त्वा तु स्वहस्तेन परिमार्ज्य निजोदरम्।
अनायास प्रदायीनि कुर्य्यात्कर्म्माण्यतन्द्रितः ॥२॥

(भा०) खाए हुए पदार्थ के पचने के लिये अगस्त्य कुंभकर्ण शनि और वड़वानल और पाँचवे भीम का स्मरण करे। जो आतापी और महा बलवान वातापी को खागये और समुद्रके जलको पीकर सुखा दिया वे अगस्त्य मुझपर प्रसन्न हों। इन मन्त्रों को पढ़कर अपने पेटको छूए (अर्थात् उसपर हाथ फेरे) उसके बाद आलस छोड़कर थोड़े परिश्रमवाले कामों को करे।

शयनात्प्राक् स्मरणयोग्या:

जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः॥
अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ॥१॥
जले रक्षतु नन्दीशः स्थले रक्षतु भैरवः।
अटव्यां वीरभद्रश्च सर्वतः पातु शङ्करः ॥२॥
अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः।
वीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनञ्जयः ॥३॥
तिस्रो भार्य्याः कफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती।
तासां स्मरणमात्रेण चोरो गच्छति निष्फलः ॥४॥

काफल्लकः ! कफल्लकः !! कफल्लकः !!!

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः ।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥५॥
नर्मदायै नमः प्रातः नर्मदायै नमो निशि ।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ॥६॥
सर्पापसर्प भद्रन्ते दूरं गच्छ महाविष ।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीक वचनं स्मर ॥७॥
आस्तीकवचनं श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्त्तते ॥
शतधा भिद्यतेमूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा ॥८॥
एतान् गारुड़मन्त्रांस्तु निशायां पठते यदि ।
मुच्यते सर्वबाधाभ्यो नात्र कार्य्या विचारणा ॥९॥

इसके बाद "शान्तिपाठ" तथा "रात्रिस्मरणसूक्त" का पढ़ना अत्युत्तम है । अनन्तर भगवान का स्मरण करता हुआ सोजाय ।

(भा०) जलमें वाराह रक्षा करें जमीन में वामन रक्षा करें जङ्गलमें नरसिंह रक्षा करें सब दिशाओं में केशव रक्षा करें ॥१॥ जलमें नंदीश रक्षा करें पृथिवी में भैरव रक्षा करें वनमें वीरभद्र रक्षा करें चारों दिशाओं में शङ्कर रक्षा करें ॥२॥ अर्जुन फाल्गुन जिष्णु किरीटी श्वेत वाहन बीभत्सु विजय तथा सव्यसाची धनञ्जय ये सब अर्जुन के नाम हैं ॥ ३ ॥ कफाल्लक की तीन स्त्री हैं दाहिनी मोहिनी रानी इन तीनों के स्मरण करनेसे चोर व्यर्थ लौट आता है (अर्थात् चोर आकर बिना चुराए ही चला जाता है ।) ॥ ४ ॥ अगस्ति, माधव, बड़े बलवान मुचकुन्द, कपिल मुनि, आस्तीक, ये पाँच सुखसे शयन करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ सवेरे नर्मदा को नमस्कार है रातमें नर्मदाको नमस्कार है हे नर्मदा विषवाले साँपसे हमें बचाओ ॥६॥ हे महत विष धारनेवाले साँप ! हटो दूर हो ! तुम्हारा कल्याण हो । जनमेजयके यज्ञके

अन्तमें कही हुई आस्तीक की बात याद करो ॥ ७ ॥ जो सांप आस्तीक की बात सुनकर नहीं लौट जाता उसका सिर सीसो के पेडके फलके समान हजार टुकड़ा होजाता है ॥ ८ ॥ जो इन गारुड़ मन्त्रों को रातमें पढ़ता है वह सब बाधाओं से छूटजाता है इसमें बिचार मत करो (अर्थात् सत्य है) ॥ ९ ॥

गोमाहात्म्य

(संक्षेप)

पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्रःप्रतिष्ठितः ।
मध्ये देव गणाः सर्व्वे रोम कूपे महर्षयः ॥१॥
नागाः पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुलपर्वताः ।
मूत्रे गङ्गादयो नद्यो नेत्रयोः शशिभास्करौ ॥२॥
एते यस्या स्तनौ देवाः सा धेनुर्वरदास्तु मे ।
वर्णितंधेनुमाहात्मं व्यासेनश्रीमताखिदम् ॥३॥

भावार्थ—पीठमें ब्रह्मा वास करते हैं, गलेमें विष्णु, मुखमें त्रिनेत्र रुद्र, और मध्यस्थल अर्थात पेटमें सर्वदेवतावास करते हैं और रोम रोम में नारद, व्यास, पाराशर, वशिष्ट, भरद्वाज, विश्वामित्र, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि तपोधन महर्षीगण वास करते हैं पुच्छमें नागदेवता, चारों खुरोंमें पर्वत मूत्रमें गंगादि नदियां और एक नेत्रमें सूर्य और दूसरेमें चन्द्रमा वास करते हैं। ऐसा श्रीविष्णु रूपी वेदव्यास भगवानका वचन है।

तीर्थस्नाने तु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने ।
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने ॥१॥
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपस्सु च ।
भुवि पर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ॥ २ ॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु प्रायश्चित्तानि शुध्यति ।
सर्वेदेवा गवामंगे तीर्थानि तत्पदेषु च ॥३॥ भविष्यपुराण ।

भावार्थ—तीर्थ स्नान करनेका जो पुन्य, ब्राह्मण भोजन करानेका जो पुन्य, हरि सेवन करनेमें जो पुन्य, महादान देनेका जो पुण्य, सब व्रत व उपवास करनेका जो पुन्य, सब तपश्चर्या करनेका जो पुन्य, सत्य भाषण करनेका जो पुन्य, सब भूमि पर्यटन करनेका जो पुन्य सब महा यज्ञोंके करनेका जो पुन्य, होता है, सो पुन्य केवल गौ की सेवा करनेसे प्राप्त हो सकता है क्योंकि जितने देवता व तीर्थ राज व महर्षी महर्षि हैं वह सदा गौ के शरीरमें निवास करते हैं ।

गाश्च शुश्रूषते यश्च, समं वेत्ति च सर्वशः ।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान् ॥ महाभारत ।

(भा०) श्री भीष्म पितामह धर्मपुत्र महाराज श्री युधिष्ठिर से कहते हैं कि हे राजन् । जो पुरुष गौओंको तृण, अन्न आदिसे सेवा करें, और सर्वत्र समदृष्टि रक्खे उस पुरुषको अर्थ गौएं सन्तुष्ट होकर दुर्लभ वरको देती हैं ।

ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ।
विनाशयन्ति कार्याणि ते नराः नारकाः स्मृताः॥ शिवपुराण ।

भावार्थ—शिव पुराणमें श्रीमहादेवजी कहते हैं कि "जो नर गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र, तपस्वी इनके कार्यमें कुछ भी विघ्न करता है, वह घोर नर्कमें गिरता है" ।

एवं क्रते महीं पूर्णां रत्नैर्दत्त्वा फलं लभेत् ।
गोप्रदानेन यत्पुण्यं गवां र रक्षणाद्भवेत् ॥ ब्रह्मपुराण ।

भावार्थ—अनाथ गौ अर्थात् बे वारसो (बिनाधनी) गौंके शीत कालमें बचानेके लिये जो मकान बना देते हैं और दाना, चारा, पानीसे गौकी सेवा करते हैं, और शीतकालमें गौओंको धूनीसे तपाते हैं, वा उन्हें वस्त्र उढ़ाते हैं वे रत्नोंसे परिपूर्ण सम्पूर्ण पृथ्वीके दानके तुल्य पुण्यके फलको पाते हैं और गौदानका पुण्य उनको गोसेवासे मिलता है।

कृत्वा गवार्थं शरणं, शीत वातसहं महत्।
आसप्तमं तारयति, कुलं भरत सत्तम॥ महाभारत।

भावार्थ—हे भरत। जो शीत, उष्ण, वायुसे बचाने योग्य गोशाला बनवाते हैं, वह अपने से सात पुरुषको तारते हैं। यह सत्य है।

दत्वा पर गवे ग्रासं, पुण्यं स महदश्नुते।
सिंह व्याघ्र भय त्रस्तां, पङ्क लग्नां जले गताम्॥

भावार्थ—पराई गाय तथा अनाथ गायको एक ग्रास अर्थात् थोड़ासा भी भोजन देनेसे बड़ा पुण्य होता है। और सिंह व्याघ्रके भयसे तथा जल, कीचड़में डूबती हुई गौकी जो रक्षा करता है उसको बड़ा भारी पुण्य होता है।

"यो वै नित्यं पूजयति गामिह यवसादिभिः।
तस्य देवाश्च पितरो, नित्यं तृप्ता भवन्ति हि"॥ पद्मपुराण।

भावार्थ—जो मनुष्य रोज रोज तृण जल आदिसे गौकी पूजा करता है उस पर देवता और पितर सदा प्रसन्न रहते हैं।

पादाक्रान्तं मृदोयो हि, तिलकं कुरुते नरः।
तीर्थ स्नातो भवेत्सद्योऽभयस्तस्य पदे पदे॥ भविष्यपुराण।

भावार्थ—जो मनुष्य गायके खुरोंकी धूलि अपने मस्तक पर लगाते हैं, वे सब तीर्थोंका फल पाते हैं क्योंकि जहाँ गायें रहती हैं, वहाँ सब तीर्थ रहते हैं। इसलिये जो नर गौशालामें प्राण त्यागते हैं, वह भी तत्काल ही मुक्त हो जाते हैं।

अन्नमेव परं गावो, देवानां हविरुत्तमम् ॥
पावनं सर्व भूतानां, रक्षन्ति च वहन्ति च ॥ अग्नि पुराण
विप्रा गावश्च वेदाश्च क्रतवश्च हरेस्तनुः । गीता
बालवृद्धरोगार्ताः आत्मा अनामीत शक्तितः
प्रतिकारं कुर्यात् गवां एष धर्मः अन्यथा विप्लवः
गा रक्षेत नाखपीतासु न पिबेन्न तिष्ठेदुपविष्टासु
न स्वयमुत्थापयेच्छनैरार्द्रशाखया सपलाशया
पृष्ठतो निहन्यात् ॥ शङ्ख स्मृति

भावार्थ—गौओंके पुत्रोंसे अन्न होता है, और गौ होसे सब देवताओंको हवि मिलती है, और केवल गौके ही दूधसे पञ्चगव्य बनता है, और उसीके पानसे लोग पवित्र होते हैं।

अर्थ—ब्राह्मण, गाय, वेद, यज्ञ, ये हरि हीके शरीर हैं।

भावार्थ—शङ्खमुनि कहते हैं कि बाल, वृद्ध, रोगी कोई भी हो, बड़े परिश्रमसे शक्ति अनुसार गायकी सेवा करें इससे वह सदैव सुख पायेंगे और जो नहीं करेंगे, वह नष्ट हो जायेंगे। गायों की रक्षा करे उनको बिना जल पिलाए आप न पीवे वह बैठें तो आप बैठे वह स्वयं उठें तो उठने दे (बल) उठावे न कोमल कोमल पत्तों से उनकी पीठ सुहरावे।

भारत महिमा

श्रीमन्मत्स्य वराह कूर्मनृहरीत्याद्यावतारैस्तथा ।
सप्तर्षि प्रमुखोन्नता खिलमही वाक्यैः पवित्रीकृतम् ॥
गङ्गासूर्य सुतादि पुण्यतटिनी स्वच्छाम्बुभिः पूरितम् ।
श्रीमन्भारतवर्ष ! चारुचरितं त्वां नौमि भक्त्या सदा ॥१॥

हे श्रीमन् भारतवर्ष ! भगवान मत्स्य, कूर्म, वराह, नर सिंह, आदि अवतारों से और सप्तर्षि आदि ऋषियों के मुँहसे निकले हुये महावाक्यों से पवित्र, तथा गङ्गा, यमुना आदि पवित्र नदियों के स्वच्छ जलों से भरे और सुन्दर चरित्र वाले तुमको भक्तिसे सदा प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

श्रीरामत्रय भीष्म पाण्डुतनय श्री विक्रमाह्वस्तथा ।
भूप श्री शिवराज वीर रणजित् राणा प्रतापादयः ॥
धर्मं यस्य पराक्रमैरहरहः सम्पालयन्तोऽभवन् ।
श्रीमन्भारत वर्ष चारु चरितं त्वां नौमि भक्त्या सदा ॥२॥

हे श्रीमन् भारत वर्ष ! परशुराम, राम, बलराम, भीष्म पितामह पाँचों पाण्डव, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम नकुल, सहदेव, विक्रमादित्य, महाराज शिवाजी, वीर रणजीत सिंह, महाराणा प्रताप सिंह, आदि वीरों ने जिसके धर्मका अपने पराक्रमों से दिन दिन पालन किया है ऐसे सुन्दर चरित्रवाले तुमको मैं भक्तिसे प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

श्रीवाल्मीकि वशिष्ट गौतम कणाद्‌व्यासगर्गादयः ।
श्री गोवर्द्धन हर्ष बाण सुकवि श्रीकालिदासादयः ॥
यद्भूमण्डल मण्डलाय विविध ग्रन्थान्मुदारो रचन् ।
श्रीमन्भारतवर्ष चारु चरितं त्वां नौमि भक्त्या सदा ॥३॥

हे श्रीमन् भारत वर्ष । जहाँ वाल्मीकि, वशिष्ठ, गौतम, कणाद, व्यास, गर्ग आदि ऋषि, गोवर्द्धन, हर्ष, बाण कालिदास आदि कवियों ने भूमण्डलको शोभित करनेके लिये अनेक ग्रन्थोंको बनाये ऐसे सुन्दर चरित्र वाले तुमको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

वह्लीकाङ्ग कलिङ्ग वङ्ग मगधान्ध्राद्यप्रदेशोत्करैः ।
नाना भाव विभूति भूषितमहा भाषाभरैर्भावितम् ॥

तत्तद्देश विचित्ररूप लिपिभि र्लीलाकरं लालितम्।
श्रीमन्भारतवर्ष चारुचरितं त्वां नौमि भक्त्या सदा ॥४॥

हे श्रीमन् भारत वर्ष! वहांके अंग, बंग, कलिंग, मगध, आन्ध्र आदि देशों की उत्पन्न अनेक प्रकारकी भाव, और विभूतिसे शोभित बड़ी बड़ी भाषाओं से और उन उन देशों की विचित्र विचित्र लिपियों से शोभा की खानि, और प्यार करनेकी योग्य ऐसे सुन्दर चरित वाले तुमको मैं भक्तिसे सदा प्रणाम करता हूं ॥४॥

पूर्वं यत्र सुभूतले समभवन् वीराश्च सत्यव्रताः।
धीरादेशहितैषिणश्च पुरुषा यैः शोभितस्त्वं सदा ॥
भाव्यन्ते न कथं तथाऽत्र समये तत्र त्वया धीमता।
श्रीमन्भारतवर्ष चारुचरितं त्वां नौमि भक्त्या सदा ॥५॥

हे श्रीमन् भारत वर्ष! जिस भूमि में पहले जैसे बड़े बड़े वीर, सत्यव्रत धारी, धीर, और देश हितैषी पुरुष उत्पन्न हुए थे जिनसे तुम सदा सुशोभित हुए थे इस समय उसी भूमिमें वैसे पुरुष तुमसे क्यों नहीं पैदा किये जाते—ऐसे सुन्दर चरित वाले तुमको मैं सदा भक्तिसे प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥

SRI SRI BRAHMA

ऋजुस्तवमञ्जूषा

श्रीगणेशाय नमः

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्बलिं बध्नता ।
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्त्तुं धराम् ॥
पार्व्वत्या महिषासुर प्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये ।
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात्स नागाननः ॥१॥
विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवी हव्यवाट् ।
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुड़ो विघ्नेभपञ्चाननः ॥
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधिर्वाड़वः ।
विघ्नाघौघ घनप्रचण्ड पवनो विघ्नेश्वरः पातु नः ॥२॥
खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरम् ।
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोल गण्डस्थलम् ॥

(भा०) त्रिपुरासुरको जीतने के लिये शिवने, बलिको छलसे बांधने के लिए विष्णुने, जगत की रचना करने के लिये ब्रह्माने, पृथ्वी धारण करने के लिए शेषनागने, महिषासुरको मारने के लिए पार्वतीने, सिद्धि पाने के लिए सिद्धाधिपोंने, (सनकादि ऋषियोंने) और सब संसारको जीतने के लिए कामदेवने जिन गणेशजी का ध्यान किया वह (गणेशजी हमलोगों का) पालन करें ॥ १ ॥ विघ्न रूप अन्धकार के नाश करने वाले सूर्य, विघ्न रूप वनको जलानेवाले अग्नि, विघ्नरूपसर्प समूह के खानेवाले गरुड़, विघ्नरूप हाथीओंको मारनेवाले सिंह, विघ्नरूप ऊंचे पहाड़को तोड़नेवाले वज्र, विघ्नरूप मेघ समूह को उड़ा देनेवाले बलवान वायुरूप गणेश

दन्ताघात विदारितारिरुधिरैः सिन्दूर शोभाकरम् ।
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥३॥
गजाननायमहसे प्रत्यूह तिमिरच्छिदे ।
अपारकरुणापूरतरङ्गितदृशे नमः ॥ ४ ॥
अगजानन पद्मार्कं गजाननमहर्निशम् ।
अनेकदन्तं भक्तानां एकदन्तं उपास्महे ॥ ५ ॥

ध्यानम्—श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः,
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम् ।
दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयवरमनसं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रम्,
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ॥

को हम लोगोंका पालन करें ॥ २ ॥ नाटे मोटे शरीर वाले अच्छे हाथी के समान मुंहवाले लम्बे पेटवाले सुन्दर गिरते हुए मदके सुगन्ध की लोभी भौंरों के चाटने से हिलते हुए गालवाले, दांतों की टक्कर से फाड़े गए शत्रुओं की खूनसे सिन्दूर की शोभा बनानेवाले पार्वतीके पुत्र और कामों में सिद्धि देनेवाले गणेशजी की वन्दना करता हूं ॥ ३ ॥ विघ्नरूप अन्धकार को नाशनेवाले, अथाह करुणा रूप जल से भरे नेत्रवाले, महान् गणेशजी को नमस्कार है ॥ ४ ॥ जो गणेश पार्वती के मुखरूप कमल को प्रकाशित करने में सूर्यरूप हैं जो भक्तों को अनेक प्रकार के फल देते हैं उन एक दांतवाले गणेशको दिन रात उपासना करता हूं ॥ ५ ॥

सुफेद शरीरवाले, सुफेद कपड़ेवाले, सफ़ेद फूल चन्दन और रत्न दीपों से दूधके समुद्र के तीरमें जिनकी पूजा हुई, देवता और मनुष्य जिनको अपना प्रधान पूज्य समझते हैं जो रत्नके सिंहासन पर बैठे हैं, हाथों में पाश (एक प्रकार की डोरी) अंकुश कमलका फूल लिए हैं, अभय दान और वरदान देनेवाले हैं, जिनके शिरमें चन्द्रमा

आवाहनम्—आवाहयेत्तं गणराजदेवं, रक्तोत्पलाभासमशेषवन्द्यम्।
विघ्नान्तकं विघ्नहरं गणेशं, भजामि रौद्रं सहितञ्च सिद्धया॥

स्तोत्रम्—सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥ १॥
धूम्रवर्णो गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥ २॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥ ३॥

इति गणेश स्तोत्रम्

प्रार्थना—देवेन्द्रमौलिमन्दार मकरन्दकणारुणाः।
विघ्नान् हरन्तु हेरम्ब चरणाम्बुजरेणवः॥ १॥

रहते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, प्रभु, निर्मल लक्ष्मीके साथमें रहनेवाले और प्रसन्न गणेशजीकी अपनी प्रसन्नता के लिये ध्यान करे।

देवताओं के गणके राजा, लाल कमल के समान देहकी आभावाले, सबसे प्रणाम करने के योग्य, विघ्न के काल विघ्नके हरनेवाले, शिवजी के पुत्र और सिद्धिके साथमें रहनेवाले गणेश का भजन करता हूँ।

सुमुख एकदन्त कपिल गजकर्णक लम्बोदर विकट विघ्ननाश विनायक धूम्रवर्ण गणाध्यक्ष भालचन्द्र गजानन। इन बारह नामों को जो मनुष्य विद्याके प्रारम्भ करनेके समय विवाह में घरमें प्रवेश करने के समय घरसे निकलने के समय लड़ाईमें और किसी महादुःख के समय पढ़ता है अथवा सुनता है उसको किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता।

इन्द्र के सिरमें लगे मन्दारके फूलकी धूलियों से लाल भई गणेशजीके चरण कमलकी धूलियां विघ्नों को हरण करें।

प्रणाम—एकदन्तं महाकायं लम्बोदर गजाननम् ।
विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥
क्षमापणम्—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥
इति क्षमापनं विसर्जनञ्च ।

नमो भगवते वासुदेवाय

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥१॥
येनोत्पाट्य समूलमन्दरगिरिश्छत्त्रीकृतो गोकुले,
राहुर्येन महाबलः सुररिपुः कार्य्यादशेषीकृतः ।
कृत्वा त्रीणि पदानि येन वसुधा बद्धो बलिर्लीलया,
सोऽयं पातु युगे युगे युगपतिः त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥२॥

मैं एक दाँतवाले बड़े शरीरवाले लम्बे पेटवाले हाथी के समान मुहवाले और विघ्नको नाशनेवाले गणेशदेव को प्रणाम करता हूँ ।

जिसको शैव लोग शिव, वेदान्ती लोग ब्रह्म, बौद्ध लोग बुद्ध, प्रमाण देने में समर्थ नैयायिक लोग कर्त्ता, जैनलोग अर्हन् और मीमांसक लोग कर्म कहते हैं वही तीनों लोक के स्वामी हरि हम लोगों को मनमें इच्छा किए हुए फलको दें ॥१॥ जिसने गोकुलमें मन्दरपर्वतको जड़से उठाकर छाता बना लिया, जिसने बड़े बलवान तथा देवताओं के शत्रु राहुका काम तमाम किया (अर्थात् मारडाला) और

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये, सहस्रपादाक्षि शिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥३॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहम्।
तीर्थास्पदं शिव विरिञ्चिनुतं शरण्यम्,
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतम्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ४ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीम्,
धर्मिष्ठ आर्य्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ५ ॥

जिसने पृथिवीको तीन पैर करके खेलहीमें बलिको बाँध लिया वह तीनोंलोकके स्वामी और युगोंके पति हरि युग युगमें रक्षा करें ॥ २ ॥ हजार शरीरवाले, हजार पैर आँख सिर जंघा और हाथवाले, हजार नामवाले हजार करोड़ युगधारण करनेवाले सदा रहनेवाले और अन्त रहित पुरुष (विष्णु) को बार बार नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे महापुरुष! सदा ध्यान करनेके योग्य अनादरके नाशने-वाले, मनोरथको पूर्ण करनेवाले संपूर्ण तीर्थके रूप, शिव तथा ब्रह्मासे वन्दित शरणमें आये हुए भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, भय और पापको छुड़ानेवाले प्रणाम करनेवालोंको पालनेवाले और संसार समुद्र से पार करनेवाली नौका के समान तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ हे धर्मात्मा महा पुरुष! जो तुम्हारे चरण त्याग करनेके अयोग्य और देवता जिस को चाहते हैं ऐसी राज्यलक्ष्मी को छोड़कर अपने पिताके कहने से वनमें चले गये और अपनी प्यारी जानकी के कहने से माया के बने मृगके पीछे दौड़े उन तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

ध्यानम्—विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृश शङ्खं रथाङ्गं गदाम् ।
अम्भोजं दधतं सिताब्जनिलयं कान्त्याजगन्मोहनम् ॥
आबद्धाङ्गदहारकुण्डलमहा मौलिं स्फुरत्कङ्कणम्,
श्रीवत्साङ्कमुदार कौस्तुभधरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम् ॥
आवाहनम्—आवाहयित्तं गरुडोपरिस्थितं,रमार्धदेहंसुरराजवन्दितम्
कंसान्तकं चक्रगदाब्जहस्तं,भजामिदेवं वसुदेवसूनुम् ॥
स्तोत्रम्—ध्येयं वदंति शिवमेव हि केचिदन्ये,
शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै ।
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेव,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ १ ॥
नो सोदरो न जनको जननी न जाया,
नैवात्मजो न च कुलं विपुलं बलं वा ।
सन्दृश्यते न किलकोऽपि सहायको मे, तस्मात्० ॥२॥

करोड़ शरद के चन्द्रमा के समान, शंख चक्र गदा पद्म को धारण करने वाले, सुफेद कमल पर बैठनेवाले, अपनी छटासे संसार को मोहनेवाले, बिजायठ हार कुंडल बड़ा मुकुट और चमकते हुए कंगन को धारण करनेवाले, छातीमें भृगुके पद चिह्नको रखनेवाले, और कौस्तुभ मणिको पहरनेवाले सनकादि बड़े बड़े मुनियों से प्रशंसा करने के योग्य विष्णुको प्रणाम करता हूं ॥ गरुड़ पर चढ़े लक्ष्मीको लिये इन्द्र आदि से प्रणाम किये, कंसके नाशक शंख चक्र गदा पद्म को धारण किये वसुदेव के पुत्र विष्णु देवका भजन करता हूं। हे विष्णु कोई शिवको कोई देवीको कोई गणेशको कोई सूर्य्य को ध्यान करने के योग्य बताते हैं। किन्तु उन रूपोंसे भी तुम्ही प्रकाशित होते हो इस कारण तुम्ही हमारे रक्षक हो ॥ १ ॥ भाई बाप माता स्त्री पुत्र कुल और बल ये कोई भी मेरा सहाय नहीं है प्रभ

नोपासिता मदमपास्य मयामहान्तः,
तीर्थानि चास्तिकधिया नहि सेवितानि ।
देवार्चनञ्च विधिवन्नकृतं कदापि । तस्मात् ॥३॥
दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति,
चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहन्ति ।
सञ्जीवनञ्च परहस्तगतं सदैव । तस्मात्० ॥ ४ ॥
पूर्वं कृतानि दुरितानि मया तु यानि,
स्मृत्वाऽखिलानि हृदयं परिकम्पते मे ।
ख्याता च ते पतितपावनता तु यस्मात्, तस्मात्० ॥५॥
दुःखं जराजननजं विविधाश्च रोगाः,
काकश्वशूकर जनिर्निरये च पातः ।
ते विस्मृतेः फलमिदं विततं हि लोके, तस्मात्० ॥६॥
नीचोऽपि पापवलितोऽपि विनिन्दितोऽपि,

कारण है विष्णु तुम्ही हमारे रक्षक हो ॥ २ ॥ मैंने अभिमान छोड़कर बड़ों की सेवा नहीं की, आस्तिक बन कर तीर्थ यात्रा नहीं की और कभी विधि पूर्वक देवताओं की पूजा नहीं की इस कारण० ॥ ३ ॥ सांसारिक सुखकी इच्छायें मेरे चित्तको सदा अपनी तरफ खींचती हैं। अनेक रोग शरीरको नाश कर रहे हैं और जीवन सदाही दूसरेके हाथमें है इस० ॥ ४ ॥ मैंने पूर्व जन्मोंमें जो पाप किये हैं उन्हें याद कर मेरा कलेजा काँपता है। तुम पापियोंको तारने वाले हो यह प्रसिद्ध है इस० ॥ ५ ॥ बुढ़ापा और पैदा होनेका दुःख, अनेक प्रकार के रोग कौआ कुत्ता और सूअर होना और नरकमें गिरना, ये सब आपको भूल जानेके बड़े बड़े फल हैं इस० ॥ ६ ॥ नीच पापी और निन्दाके योग्य भी जो मनुष्य

ब्रूयात्तवाहमिति यस्तु किलैकवारम् ।
त्वं यच्छसीश निजलोकमिति व्रतं ते, तस्मात्० ॥७॥
वेदेषु धर्मवचनेषु तथागमेषु,
रामायणेऽपि च पुराणकदम्बके वा ।
सर्वत्र सर्वविधिना गदितस्त्वमेव, तस्मात् ॥ ८ ॥
इति श्रीहरिशरणाष्टकम् ॥

प्रार्थना—प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः ।
तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ॥
अज्ञानाद् यदिवा मोहात् प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥
यदसाङ्गं कृतं कर्म जानता वाप्यजानता ।
साङ्गं भवतु तत्सर्वं श्रीहरेर्नाम कीर्त्तनात् ॥
गतं पापं गतं दुःखं गतं दारिद्र्यमेव च ।
आगता सुख सम्पत्तिः पुण्याच्च तव दर्शनात् ॥

हो वह एकबार भी कहे कि मैं आपका हूं तब उसको आप अपने स्थान (वैकुण्ठ) में भेजते हैं यह आपका प्रण है इस० ॥ ७ ॥ वेद धर्मशास्त्र षट शास्त्र रामायण सब जगहों में सब तरहसे आपही का वर्णन है इस कारण आपही हमारे रक्षक हैं ॥ ८ ॥ सुफेद कमलके समान आंखवाले और सब प्रकार की पूजाओं के मालिक हरि प्रसन्न हों । उनके प्रसन्न होनेसे संसार प्रसन्न रहता है और उनके तृप्त रहने पर संसार तृप्त रहता है। अज्ञानसे अथवा मोहसे जो कुछ पूजामें भूल होजाय वह सब विष्णुके स्मरण करनेहीसे पूरी होजाती है । ऐसा वेदमें लिखा है ॥ जाने अथवा बिना जाने जो काम अधूरा रह जाय वह सब श्रीहरिके नाम उच्चारण से पूरा

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपः पूजाक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
प्रपन्नम् पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ।
यत्किञ्चित् क्रियते देव मया सुकृत दुष्कृतम् ॥
अपराध सहस्रञ्च क्रियतेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्द्दन ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व्व पाप हरो मम ॥
प्रणामः—नमः सर्वहितार्थाय जगदाधार हेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

होजाता है ॥ आपके पवित्र दर्शनसे पाप गया दुःख गया और दरिद्रता भी चली गई और सुख सम्पत्ति आगई । जिनके नाम स्मरण करनेसे और उच्चारण करने से जो कुछ तप पूजा भक्ति कमती होगई हो वह सब शीघ्र ही पूरी होजाती है उन विष्णुको प्रणाम करता हूं । हे भगवन् ! मैं मृत्यु रूप ग्रह से भरे समुद्र से डरकर आपकी शरण में आया हूं मेरी रक्षा कीजिये । और मैंने जो कुछ पाप पुण्य किया है उसको क्षमा कीजिये । हे परमेश्वर मैं दिन रात हजारों पाप करता रहता हूं मुझको अपना दास समझ कर क्षमा कीजिये । हे जनार्दन ! मंत्रसे हीन क्रिया से हीन भक्ति से हीन जो पूजा मैंने की है वह सब पूरी होजाय । हे सुफेद कमल के समान नेत्रवाले मैं पापी हूं पाप करनेवाला हूं मेरी आत्मा पापी है मेरी उत्पत्ति भी पापही से है मेरी रक्षा कीजिये और मेरे सब पापों को छुड़ाइये । इस संसार

क्षमापणम्—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर॥

इति क्षमापणं विसर्जनञ्च

नमः शिवाय

यस्मिन् बुद्बुद सङ्कुला इव बहु ब्रह्माण्ड खण्डाः क्वचिद्,
भान्ति क्वापि च सीकरा इव विरिञ्चाद्याः स्फुरन्ति भ्रमात्।
चिद्रूपा लहरीव विश्वजननी शक्तिः क्वचिद् द्योतते,
स्वानन्दामृत निर्भरं शिव महापाथोनिधिं तं नुमः ॥१॥
भिक्षुकोऽपि सकलेप्सितदाता, प्रेतभूमिनिलयोऽपि पवित्रः।
भूतमित्रमपि योऽभयसत्रो, तं विचित्रचरितं शिवमीडे ॥२॥

की भलाई चाहनेवाले जगत को पालनेवाले आपको नमस्कार करता हूँ। यह साष्टाङ्ग प्रणाम मैंने आपको बड़ी भक्ति से किया है। इति।

जिसमें कहीं कहीं बहुत से ब्रह्माण्ड बबूलों के समान हैं कहीं कहीं ब्रह्मा आदि देवगण पानी की बूंदों के समान देख पड़ते हैं। कहीं संसार को उत्पन्न करनेवाली ज्ञानस्वरूप शक्ति पानी की लहरों के समान देख पड़ती है। और जो आत्मज्ञान का आनन्द रूपी अमृत से भरा है ऐसे शिवरूपी महासमुद्र को प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ जो आप भिखारी होने पर भी भक्तों की सब इच्छा पूरी करने वाले हैं। जो श्मसानकी अशुद्ध भूमिमें रहने पर भी पवित्र हैं और जो भूत प्रेतों के मित्र होने पर भी दूसरे को निडर करनेवाले हैं ऐसी अनोखी चालवाले शिवकी

उपाधिगम्योऽप्यनुपाधिगम्यः, समावलोक्योऽप्यसमावलोक्यः
भवोऽपि यो भूदभवःशिवोऽयं,जगत्यपायादपि नः स पायात्॥३
नमस्तुङ्ग शिरश्चुम्बि चन्द्रचामर चारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भ मूलस्तम्भाय शम्भवे ॥ ४ ॥
चन्द्राननार्द्धदेहाय चन्द्रांशु सित मूर्त्तये ।
चन्द्रार्कानलनेत्राय चन्द्रार्द्धशिरसे नमः ॥ ५ ॥
ध्यानम्—ध्यायेन्नित्यं महेशं, रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं, परशुमृगवराभीति हस्तम् प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्, स्तुतममरगणै, र्व्याघ्रकृत्तिं वसानम्,
विश्वाद्यम् विश्ववीजं, निखिलभय हरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥६॥

वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥ उपाधि (अनेक नाम) वाले होने पर भी उपाधि (विघ्न) रहित हैं, असम (तीन) नेत्रवाले हैं सही किन्तु समदर्शी हैं भव (कल्याण रूप) होने पर भी अभव (उत्पत्ति रहित) हैं, ऐसे विचित्र विशेषणवाले शिव इस जगतमें हमें विघ्नों से बचावें ॥३॥ अपने ऊँचे सिरसे छू दिया है चन्द्र रूपी सुन्दर चौंर को जिनने और संसार रूपी शहर के बसाने में जो प्रधान खंभके समान हैं उन शिवको प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ चन्द्रमा के समान मुखवाली पार्वती जिनकी आधी देह हैं चन्द्रमा की किरण की समान श्वेत जिनकी मूर्त्ति है चन्द्रमा सूर्य तथा अग्नि जिनके नेत्र हैं और जिनके सिर पर आधा चन्द्रमा रहते हैं ऐसे शिवको प्रणाम है ॥ ५ ॥ चाँदी के पहाड़ के समान जिनकी चमक है सुन्दर चन्द्रमा जिनका गहना है, रत्नोंके समान स्वच्छ जिनके शरीर हैं जिनके हाथोंमें फरसा हरिण आदि हैं जो अभय करनेवाले हैं जो प्रसन्न रहते हैं जो पद्मासन से बैठते हैं जिनको चारों तरफ देवता लोग खड़े होकर स्तुति करते रहते हैं जो बाघकी खाल पहनते हैं जो संसार से पहले हुए हैं जो संसार के उत्पन्न करनेवाले हैं जो सब भयों को

आवाह०—एह्येहि गौरीश पिनाकपाणे, शशाङ्क मौले वृषभाधिरूढ़
देवाधि देवेश महेश नित्यं, गृहाण पूजाभगवन्नमस्ते ॥७॥

स्तोत्रम्—गङ्गातरङ्गरमणीयजटा कलापम् ।
गौरी निरन्तर विभूषित वामभागम् ॥
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं ।
वाराणसी पुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ १ ॥
वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपम् ।
वागीश विष्णु सुरसेवितपादपीठम् ॥
वामेन विग्रह वरेणकलत्रवन्तम् । वाराणसी० ॥२॥
भूताधिपं भुजग भूषण भूषिताङ्गम् ।
व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ॥
पाशाङ्कुशा भयवरप्रदशूलपाणि । वाराणसी० ॥३॥

छुड़ानेवाले हैं जिन्हें पाँच मुंह हैं और तीन नेत्र हैं ऐसे महेश (शिव) का ध्यान करे ॥ ६ ॥ हे गौरी के पति पिनाक नाम धनुष धारनेवाले सिरमें चन्द्रमा रखनेवाले बैल पर चढ़नेवाले देवताओं के देवता महेश भगवान मेरी पूजा नित्य लीजिये आपको प्रणाम करता हूं ॥७॥ गङ्गाकी तरङ्ग से शोभित है जटाजूट जिनकी पार्वती से सर्वदा शोभित है बाम अंग जिनका जो विष्णुके प्यारे हैं और जो कामदेव के मदका नाश करनेवाले हैं ऐसे वाराणसी (काशी) पुरीके पति विश्वनाथ का भजन करो ॥ १ ॥ जिनका वर्णन वचन से नहीं हो सकता जिनके रजोगुण तमोगुण सत्वगुण अनेक प्रकार के रूप हैं जिनके चरण की सेवा ब्रह्मा विष्णु करते हैं जिनके बाएं अंगमें स्त्री (पार्वती) विराजती हैं ऐसे० ॥ २ ॥ भूतों के स्वामी जिनके शरीर साँपों के गहनों से भूषित हैं बाघ की खाल (चाम) जिनका वस्त्र है जो जटाको धारण करनेवाले जिनके तीन नेत्र हैं पाश अंकुश अभय तथा वर देनेकी मुद्रा

शीतांशुशोभित किरीट विराजमानं ।
भालेक्षणानल विशोषित पञ्चबाणम् ॥
नागाधिपारचित भासुर कर्णपूरं । वाराणसी० ॥४॥
पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां ।
नागान्तकं दनुजपुङ्गवपन्नगानाम् ॥
दावानलं मरण शोकजराटवीनां । वाराणसी० ॥५॥
तेजोमयं सगुण निर्गुणमद्वितीयं ।
आनन्दकन्द मपराजितमप्रमेयम् ॥
नागात्मकं सकल निष्कलमात्मरूपम् । वाराणसी० ॥६॥
रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं ।
वैराग्य शान्तिनिलयं गिरिजासहायम् ॥
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामम् । वाराणसी० ॥७॥

और त्रिशूल जिनके हाथमें हैं ऐसे० ॥ ३ ॥ जो चन्द्रमा से प्रकाशित किरीट से शोभित होनेवाले ललाट के नेत्र की आगसे कामदेव को भस्म करनेवाले और बड़े बड़े सांपों से सुन्दर चमकदार कुंडल बनानेवाले हैं ऐसे० ॥ ४ ॥ जो पाप रूपी मतवाले हाथियों के मारनेवाले सिंह हैं जो दैत्य रूपी बलवान सांपों के प्राण का नाश करनेवाले गरुड़ हैं और जो मरण शोक बुढ़ापा रूपी महावन के जलानेवाले दावानल नामक अग्नि हैं ऐसे० ॥ ५ ॥ जो तेज से प्रकाशित हैं जो सगुण निर्गुण दोनों हैं जिनके बराबर दूसरा कोई नहीं है जो आनन्द के मूल हैं जिनको आजतक कोई भी जीत न सका जिनका तोल नहीं हो सकता जो सांपों के धारण करनेवाले हैं जिनका रूप बहुत बड़ा तथा बहुत छोटा भी है, और जो परमात्म स्वरूप हैं ऐसे० ॥ ६ ॥ जो प्रेम और शत्रुता से रहित हैं जो अपने भक्तों पर कृपा और विराग (संसार से उदासी) के स्थान हैं पार्वती जिनकी सहाय हैं मधुरता

आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां ।
पापे रतिञ्च सुनिवार्य्य मनःसमाधौ ॥
आदाय हृत्कमल मध्यगतं परेशं ।
वाराणसीपुरपतिं भजविश्वनाथम् ॥ ८ ॥
वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य ।
व्याख्यात मष्टकमिदं पठते मनुष्यः ॥
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्त्तिं ।
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥ ९ ॥
विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिव सन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेनसहमोदते ॥ १० ॥
इति व्यासकृतं विश्वनाथाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

और धीरतासे सुन्दर हैं और विषसे शोभित होनेवाले हैं ऐसे० ॥७॥ सब आशाओ को छोड़ कर दूसरे की निन्दा करने से बच कर पापसे मनको हटा कर मनको समाधिमें लगाकर और अपने हृदय रूपी कमलमें परमात्मा शिवका ध्यान कर वाराणीपुरी के पति विश्वनाथ का भजन करो ॥ ८ ॥ जो मनुष्य वाराणसीपुरी के पति विश्वनाथकी स्तुति के आठों श्लोकोंका पाठ करता है वह इस जन्ममें विद्या, धन, बहुत सुख और बड़ाई को पाता है और मरने पर मोक्ष पाता है ॥ ९ ॥ जो इस विश्वनाथाष्टककी शिवजी के समीप पाठ करता है वह शिव लोक जाकर शिवजी के साथ आनन्द करता है ॥१०॥ मैं आवाहन करना नहीं जानता पूजा करना नहीं जानता विसर्जन करना भी नही जानता हे परमेश्वर क्षमा करिये। हे तीन दिव्य नेत्रवाले, तथा पिनाक हाथमें लेनेवाले, वज्र धारण करनेवाले, हाथमें त्रिशूल लेनेवाले, तीन लोकके नाथ दण्डपाशतलवार लेनेवाले, भूतोंके पति शान्त रूपवाले, उत्पत्ति स्थिति नाशके कारण

प्रार्थना—आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥
प्रणाम—नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्यचक्षुषे।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः॥
नमः त्रिशूलहस्ताय दण्डपाशासिपाणये।
नमः त्रैलोक्यनाथाय भूतानां पतये नमः॥
नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर॥
क्षमापनं—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर॥
इति क्षमापनं. विसर्जनञ्च।

नमो भगवते आदित्याय

यस्योदयेनेह जगत्प्रबुध्यते,
प्रवर्त्तते चाखिलकर्मसिद्धये।
ब्रह्मेन्द्रनारायणरुद्रवन्दितः,
स नः सदा यच्छतु मङ्गलं रविः॥ १॥

शिव आपको नमस्कार है। हे परमेश्वर मैं अपनेको आपके चरणों में अर्पण करता हूँ आपही हमारे रक्षक हैं।

जिनके उदय होने से जगत् जाग जाता है और अपना सब काम करने के लिये तैयार होजाता है। ब्रह्मा इन्द्र नारायण रुद्र जिनकी वंदना करते हैं वह सूर्य भगवान

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुम्,
भानुं समस्तजगता मधिपं भजामि ।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जैः,
माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ॥ २ ॥
ब्रह्माण्डसम्पुटकलेवरमध्यवर्त्ती,
चैतन्यपिण्डमिवमण्डलमस्ति यस्य ।
आलोकितोऽपि दुरितानि निहन्ति यस्तम्,
मार्त्तण्डमादिपुरुषं प्रणमामि नित्यम् ॥ ३ ॥
यद्बिम्बमम्बरमणिर्यदपां प्रसूतिः,
नक्ता निषिञ्चति यदग्निशिखासुभासः ।
योत्स्ना निशासु हिमधाम्नि च यन्मयूखाः
पूषा पुराण पुरुषः स नमोस्तु तस्मै ॥ ४ ॥
सर्वात्मा सर्वकर्त्ता च सृष्टि जीवनपालकः ।
हितः स्वर्गापवर्गस्य भास्करेश नमोस्तुते ॥ ५ ॥

हम लोगोंको सदा मंगल दें ॥१ ॥ लाल कमल पर बैठनेवाले संपूर्ण गुणोंके समुद्र सब संसारके स्वामी हाथोंमें दो कमल का फूल तथा अभय मुद्राको धारण करनेवाले मानिक के बने मुकुट को पहरनेवाले लाल रङ्गके शरीरवाले और तीन आंख वाले, सूर्यका भजन करता हूं ॥ २ ॥ जो ब्रह्माण्ड रूपी डब्बेके बीचमें रहनेवाले हैं जिनका मडल (बिम्ब अर्थात गोला) ज्ञानके पिण्डके समान है और जो दर्शन मात्रहीसे पापों का नाश करते हैं ऐसे आदि पुरुष सूर्य को नित्य प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥ जिनका बिम्ब आकाशका प्रकाशक रत्न है जलोंको उत्पन्न करनेवाला है और रातमें अग्निकी ज्वालामें चमक पैदा करता है और जिनकी किरन रातको चन्द्रमा की चांदनी बनजाती है उन प्राचीन पुरुष सूर्यदेवको नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥ सबके प्राणस्वरूप

ध्यानम्—ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती,
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी,
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥ ६ ॥
आवाहनम्—आवाहयेत्तं द्विभुजं दिनेशं सप्ताश्ववाहं द्युमणिं ग्रहेशम्
सिन्दूरवर्णप्रतिमावभासं भजामि सूर्यं कुलवृद्धिहेतोः ॥७॥
स्तोत्रम्—आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः ।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः ॥ १ ॥
पञ्चमं तु सहस्रांशुः षष्ठं चैव त्रिलोचनः ।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं तु विभावसुः ॥ २ ॥
नवमं दिनकृत्प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकम् ।
एकादशं त्रयीमूर्त्तिः द्वादशं सूर्य एवच ॥ ३ ॥

सबके कर्त्ता संसारके प्राणके पालनेवाले और स्वर्ग तथा मोक्ष के देने वाले सूर्य भगवानको नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥ सूर्यके मण्डलके बीचमें रहनेवाले कमल के आसन पर बैठे विजायठ मकली के रूप का चित्र जिसमें बना है ऐसा कुण्डल किरीट और हार धारण करनेवाले सुवर्ण से बने शरीर वाले (अर्थात जिनका शरीर ठीक ठीक सोने के समान चमक रहा है) और शंख चक्र को लेनेवाले सूर्य नारायण का सदा ध्यान करता हूँ ॥ ६ ॥ जो दो भुजावाले और दिनके स्वामी हैं जिनके रथमें सात घोड़े हैं जो आकाश के प्रकाशक मणि और ग्रहों के पति हैं जिनकी मूर्त्ति सिन्दूरके रंगकी है ऐसे सूर्य का आवाहन और भजन अपने कुलकी वढ़ती के लिये करता हूँ ॥ ७ ॥ आदित्य, दिवाकर, भास्कर, प्रभाकर, सहस्रांश, त्रिलोचन, हरिदश्व विभावसु दिनकृत् द्वादशात्मक त्रयीमूर्त्ति सूर्य इन बारह नामों को जो मनुष्य प्रातः

द्वादशैतानि नामानि प्रातःकाले पठेन्नरः ।
दुःस्वप्ननाशनश्चैव सर्व्वं दुःखञ्च नश्यति ॥ ४ ॥
दद्रु कुष्ठहरश्चैव दारिद्र्यं हरते ध्रुवम् ।
सर्व्वतीर्थप्रदश्चैव सर्व्वकामप्रवर्द्धनम् ॥ ५ ॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय भक्त्या नित्यमिदं नरः ।
सौख्यमायुस्तथाऽऽरोग्यं लभते मोक्षमेव च ॥ ६ ॥

इति सूर्य्यस्तोत्रम् ।

प्रार्थना—एकचक्रो रथो यस्य दिव्य कनकभूषितः ।
स मे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः ॥ ७ ॥
नमः सूर्य्याय शान्ताय सर्व्वरोगविनाशिने ।
ममेप्सितं फलं दत्त्वा प्रसीद परमेश्वर ॥ ८ ॥
प्रणामः—जवाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
ध्वान्तारिं सर्व्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥ ९ ॥

स्मरण करता है उसके खराब सुपनेका और सब दुःखोंका नाश होता है । दाद और कोढ़ीका रोग कट जाता है दरिद्रता दूर होती है सब तीर्थ यात्रा करने का फल होता है और सब काम पूरे होते हैं । जो मनुष्य सबेरे उठकर भक्ति से रोज इसका पाठ करता है वह सुख आयुर्बल नीरोगता और मोक्ष पाता है । जिनके सोनेसे बने दिव्य रथमें एक चक्का है वह हाथमें कमल लेनेवाले दिवाकर मेरे ऊपर प्रसन्न हों । शान्तरूप और सब रोगके विनाश करनेवाले सूर्य्य को नमस्कार है वे मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मेरी कामना को पूरी करें । ओड़हुल के फूलके समान लाल कश्यप ऋषि के पुत्र महा प्रकाशवाले अंधकार का नाश करनेवाले और सब पापों से छुड़ानेवाले सूर्य्यका प्रणाम करता हूं ॥ इति

क्षमापनम्—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत् ।
तत्सर्व्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥
इति क्षमापनं विसर्जनञ्च ।

देव्यै नमः ।

मृणालव्यालवलया वेणीबन्धकपर्दिनी ।
हरानुकारिणी पातु लीलया पार्वती जगत् ॥१॥
आनन्दमन्थरपुरन्दरमुक्तमाल्यम्,
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं भवतु नो विजयाय मञ्जु,
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥ २ ॥
ब्रह्मादयोऽपि यदपाङ्गतरङ्गभङ्ग्या,
सृष्टिस्थितिप्रलयकारणतां व्रजन्ति ।
लावण्यवारिनिधिवीचिपरिप्लुतायै,
तस्यै नमोस्तु सततं हरवल्लभायै ॥ ३ ॥
प्रचण्डखण्डमुण्डयोर्महाबलैक खण्डिनी,
ह्यनेकरुण्डमुण्डयुग्मणी बलैक दायिनी ।

कमल की डण्डीहो जिनके हाथमें सांपों का कङ्कन है बन्धी चोटी ही जिनके शिरमें जटा है इस प्रकार खेलमें शिवजी की नकल करनेवाली पार्वती जगत् का पालन करें ॥ १ ॥ आनन्द से स्थिर होरही है इन्द्रकी दी हुई माला जिसमें नूपुरके मधुर शब्दों से सुन्दर और महिषासुर के सिर पर बलसे रखा हुआ पार्वतीका कोमल चरण कमल हम लोगों को मङ्गल देवें ॥ २ ॥ जिनकी कृपा कटाक्षसे

क्वचित्स्वशक्ति कारिणी रमाविलासदायिनी,
मुदेऽस्तु कालिका सदा समस्तपापहारिणी ॥४॥

ध्यानम्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म तम् ॥५॥

आवाहनम्—श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानञ्च रक्तोत्पलम्,
रत्नाढ्यं कलशं परं भयहरं सम्बिभ्रती शाश्वतीम् ।
मुक्ताहारलसत्पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीम्,
आवाहेत् सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दस्थिताम् ॥६॥

स्तोत्रम्—न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने विलपनं,
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं,
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मा विष्णु शिव उत्पन्न पालन और नाश करते हैं ऐसी सुन्दरतारूपी समुद्र की लहरमें भींगी हुई शिवकी प्यारी पार्वती को सदा नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ बड़े बलवान चण्ड और मुण्ड के बलका नाश करनेवाली अगणित कटे हुए सिर पड़े हैं जिसमें ऐसे समर में बलको देनेवाली, शत्रुओं के बलको हरण करनेवाली लक्ष्मी के सुखको देनेवाली और सब पापों को छुड़ानेवाली काली सदा आनन्द देवें ॥ ५ ॥ देवी महादेवी शिवकी प्यारी को सदा नमस्कार है संसार की प्रकृति अर्थात् उत्पन्न करनेवाली और कल्याण स्वरूपा भगवती को प्रणाम है हम भक्ति से उनको प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥ जिनके साँवले शरीर हैं जिनके शिरमें चन्द्रमा है जो भक्तों को वर देती हैं जो हाथों में लाल कमल को लिये रहती हैं जो रत्नों को वर देती हैं जो हाथों में लाल कमल को लिये रहती हैं जो रत्नों से भरे और भयको छुड़ानेवाले सुन्दर कलसेको हाथमें लिये रहती हैं जिनका कभी

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया,
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे,
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥८॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः,
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे,
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥९॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता,
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे,
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥१०॥

नाश नहीं होता, जो मोतियों की मालाओं से शोभित कुचों से झुकी हुई हैं जिनके तीन नेत्र विराजते हैं जिनकी पूजा देवता लोग करते हैं जो लाल कमल पर बैठती हैं ऐसी शिवकी वधू पार्वती का आवाहन करे ॥ ७ ॥ हे मा ! तुम्हारा मन्त्र, यन्त्र स्तुति, आवाहन, ध्यान, स्तुति कथा, मुद्रा और विलाप ये कुछ भी मैं नहीं जानता, पर इतना तो जानताहूँ कि तुम्हारे शरणमें आजानेको से सब क्लेश छूटजायँगे ॥ ८ ॥ तुम्हारी पूजाकी विधि न जानने से, धनके न रहने से, आलस से अथवा उन विधियों को अच्छी तरह न करने से जो तुम्हारे चरणों की सेवा करनेमें भूल हुई हो उसको क्षमा करो । तुम सबका उद्धार करनेवाली शिवकी प्यारी और मेरी मा हो मेरे अपराध को भूल जाओ कारण यह है कि पुत्र कुपुत्र होजाता है पर माता कुमाता नहीं होती ॥९॥ हे पार्वती माता ! पृथ्वीमें तुम्हारे अनेक पुत्र बहुत हैं

परित्यक्ता देवान् विविध विधिसेवाकुलतया,
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता,
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥११॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा,
निरातङ्को रंको विहरति चिरं कोटिकनकैः ।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदम्,
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥१२॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो,
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीम्,
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥१३॥

पर तुम्हारे पुत्रों में एक मैं ही चञ्चल हूँ तो भी मुझको छोड़ देना तुमको उचित नहीं है कारण यह कि पुत्रके कुपात्र होनेपर भी माता कुमाता नहीं होती ॥ १० ॥ हे जगतकी माता मेरी माता ! मैंने आपकेचरणों की सेवा नहीं की और आपको मैं ने द्रव्य भी नहीं समर्पण किया तोभी आप जो मेरे ऊपर स्वाभाविक इतना स्नेह करती हैं वहआपकाधर्म है कारण यह कुपुत्र होने पर भी माता कुमाता नहीं होती ॥ ११ ॥ हेगणेश की माता ! मैं ने अनेक प्रकार की विधियों से पूजा करने में घबड़ाकरसर्वदेवताओं को छोड़ दिया और मेरी उमर भी पचासी (८५) बरससे अधिक होगई यदि इस समय तुम्हारी कृपा न होगी तो मैं निरवलम्ब होकर किसकी शरणमें जाऊं ॥ १२ ॥ हे पार्वती ! यदि तुम्हारे मन्त्रों को कानसे सुनने से चांडाल भी कहीं शास्त्रका वक्ता बन जाता है और महादरिद्र भी करोड़ों रुपयों का मालिक

न मोक्षस्याकांक्षा न च विभववांछापि च न मे,
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै,
मृडानी रुद्राणी शिवशिव भवानीति जपतः ॥१४॥
नाराधितासिविधिना विविधोपचारैः,
किं रुक्षचिंतनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे,
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ १५ ॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं, करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः, क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१६॥

बनकर निर्भयतासे विहार करता है तो विधिपूर्वक तुम्हारे मन्त्रों का जप करनेवाला कैसा सुखी होता है इस बात को कौन जानता है ॥ १३ ॥ जिनके शरीरमें चिताका भस्म लगा है, जिनका भोजन विष है, जो नंगे रहते हैं जो सिरपर जटा बांधे रहते हैं और गले में सांपों की माला पहरते हैं, तथा बैलपर चढ़ते हैं जो हाथमें आदमी की खोपड़ी की हड्डी लिये रहते हैं और भूतों के मालिक हैं ऐसे शिवजी जगदीश कहलाते हैं, हे भवानी! यह तुम्हारे साथ व्याह होनेका फल है ॥ १४ ॥ हे सुन्दर मुखवाली माता! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं धनकी चाह नहीं विज्ञानका लोभ नहीं और सुखकी भी लालसा नहीं है, इस कारण मैं यही याचना करता हूं कि मेरा ऐसा जन्म हो जिस जन्ममें मृडानी रुद्राणी शिव भवानी इत्यादि नाम जपते जपते सारी उमर बीते ॥ १५ ॥ हे सुन्दरी माता! मैंने अनेक प्रकार के उपचारों से तुम्हारी सेवा नहीं की और कोमल वचनों से विनती भी नहीं की तो व्यर्थ चिन्ता करनेसे क्या? यदि तुम मेरे ऊपर कृपा रखती हो तो यह तुम्हारा परम धर्म है क्योंकि

जगदम्ब विचित्रमत्र किं, परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परावृतं, नहि माता समुपेक्षते सुतम् ॥१७॥
मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत् समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥ १८ ॥
इति श्रीदेवी स्तोत्रम् ।

प्रार्थना—देवि प्रपन्नार्त्तिहरेप्रसीद प्रसीदमातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहिविश्वं, त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥१९॥

प्रणाम—तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥ २० ॥

क्षमापनम्—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥२१॥
इति क्षमापनं विसर्जनञ्च ।

यह कि तुम मेरी माता हो ॥ १६ ॥ हे करुणाकी समुद्र दुर्गा ! जब मैं किसी विपत्ति में पड़ता हूँ तब तुम्हारा स्मरण करता हूँ इस बात को सोचकर तुम मुझे दुष्टमत समझो कारण यह कि जब लड़के को भूख लगती है तभी माता को याद करता है॥ १७ ॥ हे जगदम्ब ! यदि तुम्हारी पूरी कृपा मेरे ऊपर रहती है तो इसमें विचित्रता क्या है ? अनेक अपराध करनेवाले पुत्रको माता नहीं छोड़ती ॥ १८ ॥ हे महादेवी ! मेरे समान दूसरा कोई पापी नहीं और तुम्हारे समान पापको छुड़ानेवाली कोई देवी नहीं ऐसा जान कर जैसा उचित समझो वैसा करो ॥ १९ ॥ हे शरण आए मनुष्य का दुःख हरनेवाली देवी ! प्रसन्न हो। हे सम्पूर्ण जगत् की माता ! प्रसन्न हो। हे जगत् की स्वामिनी ! प्रसन्न हो। संसार का पालन करो। हे देवी ! तुम चर अचरका पालन करनेवाली हो ॥२०॥ मैं संसारसे डरकर कठिनता से प्राप्त

महालक्ष्म्यै नमः

ध्यानम्—पाशाक्षमालिकाम्भोज शृणिभिर्याम्यसौम्ययोः ।
पद्मासनस्थां ध्यायेच्च श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ॥ १ ॥
गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्व्वालङ्कारभूषिताम् ।
रौक्म पद्म व्यग्रकरां वरदां दक्षिणेन तु ॥ २ ॥

स्तोत्रम्—नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते ।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
नमस्ते गरुड़ारूढ़े कोलासुरभयङ्करि ।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि ।
सर्वदुःख हरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥

के योग्य पाप का नाश करनेवाली और संसार रूपी समुद्र से पार करनेवाली दुर्गा को प्रणाम करता हूँ ॥ २१ ॥

जिनके दोनों दहिने और दोनों बाएँ हाथों में पाश रुद्राक्ष की माला कमल और अङ्कुश है। जो कमल पर बैठी हैं। जो तीनों लोककी माता हैं जिनके शरीर का रङ्ग गोरा है जिनका रूप सुन्दर है जो सब गहनाओं से शोभित हैं जिनके बाएँ हाथमें सोने का कमल है और दाहिना हाथ वर देने के लिये है। ऐसी लक्ष्मी का ध्यान करे। हे महामाया श्रीपीठा संसार से पूजित हाथों में शङ्ख चक्र गदा पद्म धारण करनेवाली महालक्ष्मी तुमको नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे गरुड़ पर चढ़नेवाली कोला नाम दैत्यों को भय देनेवाली सब पापों का नाश करनेवाली महालक्ष्मी तुमको नमस्कार है ॥४॥ सब जाननेवाली सब प्रकारके वरको देनेवाली सब दुष्टों को भय देनेवाली और सर्व दुःखको हरनेवाली महालक्ष्मीको नमस्कार है ॥ ५ ॥

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ।
मंत्रमूर्त्ते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
आद्यंतरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ।
योगजे योगसंभूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥
स्थूल सूक्ष्म महारौद्रे महाशक्ति महोदरे ।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
पद्मासन स्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालंकार भूषिते ।
जगत्स्थिते सदावन्द्ये महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥१०॥
महालक्ष्म्यष्टकस्तोत्रम् यः पठेद्भक्तिमान्नरः ।
सर्वं सिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा ॥ ११ ॥

हे सब सिद्धियों को, विद्या भोग तथा मोक्ष को देनेवाली मन्त्रकी मूर्त्ति महालक्ष्मी तुमको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे आदि अन्तसे रहित आदि महेश्वरी ! तुम योग उत्पन्न करनेवाली और योगसे उत्पन्न होनेवाली हो। हे महालक्ष्मी तुमको नमस्कार है ॥७॥ हे बहुत बड़ी तथा मोटी देह धारण करनेवाली अत्यन्त भयङ्कर रूपवाली शक्ति को धारनेवाली महान उदरवाली और महा पापों को हरनेवाली महालक्ष्मी तुमको प्रणाम है ॥ ८ ॥ हे कमल के आसन पर बैठी हुई परब्रह्मका स्वरूप लक्ष्मी, हे परमेश्वरी अनेक प्रकार के भूषणों से शोभित होनेवाली संसार का आधार रूप महालक्ष्मी तुमको नमस्कार है ॥ १० ॥ जो मनुष्य इस महालक्ष्मी के आठों श्लोकों का पाठ भक्ति से करता है वह सब सिद्धि पाता है और सदा के लिये राज्य

एककालं पठेन्नित्यं महापापविनाशनम् ।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः ॥ १२ ॥
त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम् ।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ॥ १३ ॥
प्रार्थना—नमस्ते सर्व्वभूतानां वरदासि हरिप्रिये ।
या गतिः त्वं प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्च्चनात् ॥ १४ ॥
प्रणाम—विश्वरूपस्य भार्य्यासि पद्मे पद्मालये शुभे ।
सर्व्वतः पाहि मां देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥
क्षमापनम्—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत् सर्व्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ १६ ॥

इति क्षमापनं विसर्जनञ्च ।

पाता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य एक समय (प्रातःकाल) नित्य पाठ करता है उसका पाप नष्ट होजाता है । जो दोनों समय (प्रातः और सायंकाल) नित्य पाठ करता है उसको धनधान्य मिलता है ॥ १२ ॥ जो तीनों समय (प्रातः मध्यान्ह सायंकाल) नित्य पाठ करता है उसके शत्रुका नाश होता है और लक्ष्मीजी सदा प्रसन्न हो उसे वर देती हैं ॥ १३ ॥ हे सब जीवों को वर देनेवाली विष्णु की प्यारी और शरणमें आए हुए मनुष्यों की रक्षा करनेवाली लक्ष्मी मेरी पूजा से प्रसन्न हो ॥ १४ ॥ हे महालक्ष्मी देवी तुम विष्णु की स्त्री हो, कमलको धारण करनेवाली कमलमें निवास करनेवाली और कल्याण देनेवाली हो सब दिशाओं में मेरी रक्षा करो ॥ १५ ॥ इति

श्रीसरस्वत्यै नमः ।

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्ड मण्डितकरा या श्वेत पद्मासना ।
या ब्रह्माच्युत शङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष जाड्यापहा ॥ १ ॥
आशासुराशी भवदङ्गवल्ली, भासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम् ।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं, वन्देऽरविन्दासन सुन्दरित्वाम् ॥२॥
शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
सर्व्वदा सर्व्वदा स्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥ ३ ॥
सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृ देवताम् ।
देवत्वं पतिपद्यन्ते यदनुग्रहतोजनाः ॥ ४ ॥

जो कुन्दका फूल चन्द्रमा और वर्फके समान सुफेद हैं जो सुफेद कपड़ों को पहरती हैं जिनके हाथ वीणा से शोभते हैं जो सुफेद कमल पर बैठती हैं ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकार की मूरखपनको कुड़ाती हैं वह सरस्वती भगवती मेरा पालन करें ॥ १ ॥ हे कमल पर बैठनेवाली सुन्दरी ! सरस्वती तुम सब दिशाओं में पर्वत के समान बढ़ी हुई देहकी चमक से दूधके समुद्रको दास बनानेवाली और मंद मुसकान से चन्द्रमा को निन्दा करनेवाली तुमको प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ शरद कालमें उत्पन्न कमल के समान मुहवाली और सब मनोरथ को, देनेवाली शारदा सब सम्पत्तियों के साथ मेरे मुहमें सदा निवास करें ॥ ३ ॥ उन वचन की प्रधान देवता को प्रणाम करता हूं जिनकी कृपा से मनुष्य देवता बन जाता है ॥ ४ ॥

पातु नो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती ।
प्राज्ञेतर परिच्छेदं वचसैव करोति या ॥ ५ ॥

ध्यानम्—शुक्लां ब्रह्मविचारसार परमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्,
वीणापुस्तकधारिणी मभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्तेस्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासनेसंस्थितां,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥ ६ ॥

स्तोत्रम्—वीणाधरे विपुल मङ्गल दानशीले
भक्तार्त्तिनाशिनि विरञ्चि हरीशवन्द्ये ।
कीर्त्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥ ७ ॥
श्वेताब्जपूर्ण विमलासन संस्थिते ! हे,
श्वेताम्बरावृतमनोहर मंजुगात्रे ।

बुद्धिरूपी सोनेकी कसौटी सरस्वती हम लोगों का पालन करें जो मूर्खों को केवल बोलीही से पहचान लेती है ॥ ५ ॥ जिनका रूप श्वेत है जो ब्रह्म विचार का परम तत्व है जो सब संसार में फैल रही है जो वीणा और पुस्तक को धारण करती है जो निडर बना देती है जो मूर्खता रूपी अंधेरा को दूर कर देती है जो हाथमें स्फटिक मणि की माला लिये रहती है कमल के बिछौने पर बैठी रहती है और जो बुद्धिकी देनेवाली है उस परमेश्वरी सरस्वती भगवती की वन्दना करता हूं ॥ ६ ॥ हे वीणा धारण करनेवाली अपार मङ्गल की देनेवाली भक्तों के दुःखको छुड़ानेवाली ब्रह्मा विष्णु और शिवसे प्रणाम करने के योग्य कीर्त्तिकी देनेवाली सम्पूर्ण मनोरथों को पूरा करनेवाली अच्छा पूजा के योग्य और विद्या को देनेवाली सरस्वती ! तुमको प्रणाम है ॥ ७ ॥ हे सुफेद कमल से

उद्यन्मनोल्लसित पंकज मंजुलास्ये
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥ ८ ॥
मातस्त्वदीय पदपङ्कज भक्तियुक्ताः
ये त्वां भजंति निखिला नमरान्विहाय
ते निर्जरत्वमिहयान्ति कलेवरेण
भूवन्हिवायु गगनाम्बु विनिर्मितेन ॥ ९ ॥
मोहान्धकार भरिते हृदये मदीये
मातः सदैव कुरुवास मुदारभावे
स्वीयाखिलावयवनिर्मल सुप्रभाभिः
शीघ्रंविनाशय मनोगतमन्धकारम् ॥ १० ॥
ब्रह्माजगत्सृजति पालयतीन्दिरेशः
शम्भु विनाशयति देवि तव प्रभावैः
न स्यात्कृपा यदि तव प्रकट प्रभावे
नः स्यु कथंचिदपिते निजकार्यदक्षाः ॥ ११ ॥

भरे साफ बिछौने पर बैठनेवाली सुफेद कपड़ों से ढके हैं सुन्दर शरीर जिनके उगे हुये कोमल कमल के समान कोमल मुखवाली और विद्या की देनेवाली सरस्वती ! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ हे माता ! जो तुम्हारे चरण कमलों में भक्ति रख कर सब देवताओं को छोड़कर तुम्हारा भजन करते हैं वे पृथिवी अग्नि वायु आकाश और जल इन पांच तत्वों ही के बने शरीर से देवता बन जाते हैं ॥ ९ ॥ हे उदार बुद्धिवाली माता ! मोहरूपी अन्धकार से भरे मेरे हृदय में सदा निवास करो और अपने सब अङ्गों की निर्मल कान्ति से मेरे मनके अन्धकार का शीघ्र नाश करो ॥ १० ॥ हे देवी ! तुम्हारेही प्रभाव से ब्रह्मा जगत् को बनाते हैं

शारदापञ्चकं चेदं पठेद्यो भक्तिमान्नरः
तस्यविद्या भवेन्नूनं शारदायाः प्रसादतः ॥ १२ ॥

प्रार्थना—यथा न देवो भगवान् ब्रह्मालोकपितामहः ।
त्वां परित्यज्य संतिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ॥ १३ ॥
वेदाः सर्व्वाणि शास्त्राणि नृत्यगीतादिकञ्च यत् ।
न विहीनम् त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥१४॥
लक्ष्मी र्मेधा धरापुष्टिः गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः ।
एताभिः पाहि तनुभिः अष्टाभिर्मां सरस्वति ॥१५॥

प्रणामः—सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमोनमः ।
वेद वेदान्त वेदाङ्ग विद्यास्थानेभ्य एव च ॥ १६ ॥
सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने ।
विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोस्तुते ॥१७॥

विष्णु जगत को पालते हैं और शिव विनाश करते हैं। हे प्रगट प्रभाववाली ! यदि इन तीनों पर तुम्हारी कृपा न हो तो वह किसी प्रकार अपना काम नहीं कर सकते ॥ ११ ॥ जो मनुष्य इस शारदा पञ्चक को भक्ति से पढ़ता है उसको सरस्वती की कृपा से अवश्य विद्या आजाती है ॥ १२ ॥ हे भगवती ! तुम ऐसा वर दो जिससे कि लोकके उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा तुमको छोड़कर अलग न रहैं ॥ १३ ॥ हे देवी ! मुझको ऐसी सिद्धि हो जिससे वेद शास्त्र और जो कुछ नाच और गानके पदार्थ हैं वे सब तुमसे अलग कभी न हों ॥ १४ ॥ हे सरस्वती ! लक्ष्मी मेधा धरा पुष्टि गौरी तुष्टि प्रभा धृति इन आठ मूर्त्तियों से मेरी रक्षा करो ॥ १५ ॥ सरस्वती को नित्य नमस्कार है भद्रकाली को नमस्कार है और वेद वेदान्त वेदाङ्ग तथा विद्याओं के स्थानों को प्रणाम है ॥ १६ ॥ हे महाभाग्यवती ज्ञान स्वरूपा

क्षमापनम्—यदक्षर पदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत।
तत्सर्व्वं क्षम्यताम् देवि प्रसीद परमेश्वरि
इति क्षमापनं विसर्जनञ्च।

गुरूणां पूजा।

इस संसार में गुरु, माता, वो पिता प्रत्यक्ष देवता हैं। उनकी आराधना से मनुष्य लोक परलोक दोनों का सुख भोगता है। धर्म्म शास्त्र का वचन है :—

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्त्तिरात्मनः॥ १॥
आचार्य्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्व्वजः।
नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥ २॥
न निन्दां ताडने कुर्य्यात् पुत्रं शिष्यं च ताड़येत्।
अधो भागे शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कदाचन॥ ३॥

कमलके समान नेत्रवाली ज्ञान देनेवाली बड़ी २ आंखवाली सरस्वती मुझको विद्या दीजिये मैं तुमको प्रणाम करता हूं॥ १७॥

विद्या दाता आचार्य्य साक्षात् ब्रह्म की, जन्म दाता पिता ब्रह्माकी, गर्भधारिणी माता प्रत्यक्ष पृथिवी की, और भाई अपनी ही, मूर्त्ति हैं। इसलिये आचार्य्य, माता, पिता और बड़े भाई से अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी इनमें से किसी को (विशेष करके ब्राह्मण को) किसी भांति अवमानना करनी उचित नहीं है। ताड़न करने को बुरा न समझे गुरु पिता माता का यही धर्म है। पुत्र और शिष्यका

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुं वर्षशतैरपि ॥ ४ ॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्य्याद् आचार्य्यस्य च सर्व्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्व्वं समाप्यते ॥ ५ ॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ।
न तैरभ्य ननुज्ञातः धर्म्ममन्यं समाचरेत् ॥ ६ ॥
त एव हि त्रयोलोका स्तएव त्रय आश्रमाः ।
त एव हि त्रयोवेदाः त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ ७ ॥
पिता वै गार्हपत्योऽग्निः माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ ८ ॥
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रीन् लोकान् विजयेद् गृही ।
दीप्यमानः स्व वपुषा देववद् दिवि मोदते ॥ ९ ॥

सिरमें न मारे किन्तु सिरके नीचे हाथ पैर आदि शरीरों को ताड़ना करे । सन्तान के जन्म के लिये माता पिता जो क्लेश सहते हैं पुत्र एक सौ वर्षमें भी उसका पलटा नहीं चुका सकता । प्रति दिन पिता माता का प्रिय कार्य्य करे, आचार्य्य को सर्वदा प्रसन्न रक्खे, इन तीनों के सन्तुष्ट रहने से सब तपस्या पूर्ण होती है । इन तीनों की सेवा को ही पण्डित लोग परम तपस्या कहते हैं, इनकी सम्मति के बिना कोई भी धर्म्माचरण न करना चाहिये । ये तीन जन (गुरु, माता, पिता,) त्रिलोक प्राप्ति के हेतु हैं, ये तीनों ही तीनों आश्रम की प्राप्ति के कारण हैं, तीनों ही तीनों वेद और त्रि अग्नि हैं । पिता गार्हपत्य, माता दक्षिण, और गुरु आहवनी अग्नि हैं, येही तीन अग्नि पृथिवी के बीच श्रेष्ठ हैं । इन तीनों के साथ असावधानी न करके जो गृहस्थ इनके विषय में सर्व्वदा सावधान रहता है, वह उसी कर्म्म के सहारे तीनों लोक जीत लेता है, वह स्वयं प्रकाशित होकर

आयुः पुमान्यशः स्वर्गं कीर्त्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशुं सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयात्पितृवन्दनात्॥ १० ॥
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रुषया त्वेव ब्रह्मलोकं समश्नुते॥ ११ ॥
सर्व्वे तस्यादृता धर्म्मा यस्यै ते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्ये ते सर्व्वास्तस्याफलाः क्रियाः॥१२ ॥
यावत् त्रयस्ते जीवेयुः तावन्नान्यं समाचरेत्।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्य्यात् प्रियहिते रतः॥ १३ ॥
तेषामनुपरोधेन पारत्रं यद् यदा चरेत्।
तत्तन्निवेदयेत् तेभ्यो मनोवचन कर्म्मभिः॥ १४ ॥
त्रिष्वे तेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एव धर्म्मः परः साक्षाद् उपधर्म्मोऽन्य उच्यते॥१५॥

देवताओं की भांति स्वर्ग में दिव्य आनन्द भोगता है। मनुष्य पिता माता को प्रणाम करने से आयुर्बल, यश स्वर्ग कीर्त्ति पुष्टि बल लक्ष्मी पशु धन और धान्य पाता है। मातृ भक्ति से भूलोक पिताकी भक्ति से मध्यम अर्थात् अन्तरिक्ष लोक, और गुरु भक्ति बल से ब्रह्मलोक, मिलता है। जो लोग इन तीनों का आदर करते हैं वे धर्मका आदर कर चुके, और जो इन तीनों का अनादर करते हैं उनके सब धर्म्म कर्म्म व्यर्थ हैं। जब तक ये जीवित रहें तब तक स्वतन्त्रता से कोई धर्म्म कार्य्य न करना चाहिये, परन्तु प्रति दिन इनका प्रियकार्य्य वा सेवा टहल ही करना होगा। इनकी सेवा आदिके अनुकूल परलोक कामना से मन, वचन और कर्म्म से जो कुछ धर्म्म कार्य्य करे वह सब इन्हें निवेदन करना योग्य है। इन तीनों की उक्त रीतिसे सेवा आदि करने से पुरुष के कर्त्तव्य कार्य शेष होते हैं,

गुरुवन्दना—अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥
सानन्दमानन्दकरं प्रसन्नं, ज्ञानस्वरूपं निजबोध युक्तम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोग वैद्यं, श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥४॥
वन्दे चित्तनभोगतान्धतमसौघापहं भास्करम् ।
चेतश्चञ्चल चञ्चरीक हृदयानन्द प्रदं पङ्कजम् ॥

ये ही साक्षात परम धर्म हैं, इनके सिवाय अग्नि होत्रादि दूसरे जो धर्म हैं वे सभी उप धर्म कहे जाते हैं ।

जिनका स्वरूप अखण्ड है जो चर और अचरमें व्याप्त हो रहे हैं उन ब्रह्मके पदको जिन्होंने दिखा दिया उन गुरुजी को प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ गुरु ब्रह्मा हैं गुरु विष्णु हैं गुरु शिव हैं और गुरुही परब्रह्म हैं उन गुरुजी को प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ जिन्होंने अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हुए मनुष्य की आँखको ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका से खोल दिया उन श्रीगुरुजीको प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ आनन्द के साथ रहनेवाले आनन्द करनेवाले, प्रसन्न ज्ञानके स्वरूप, आत्मज्ञान को रखनेवाले योगियों में प्रधान, पूजाके योग्य और संसाररूपी रोगके वैद्य श्रीगुरुजी को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ मन रूपी आकाश में फैले हुए गाढ़ा अन्धकार की ढेरी का नाश करनेवाले सूर्य, चित्तरूपी चञ्चल भौंरा के मन को आनन्द देनेवाले कमल, हृदयरूपी मन्दिर को अच्छी तरह प्रकाशित करनेवाले दीप,

दीप स्तवनस्य भव्य विभवं ज्ञानस्य पूर्णोदधिम् ।
वन्द्यं श्रीगुरुदेव दिव्यचरणं सद्भक्तिश्रद्धान्वितः ॥५॥

मातृ वन्दना—पितुरप्यधिका माता गर्भधारण पोषणात् ।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृ समो गुरुः ॥१॥

जनैरशेषैर्भुवि देव वृन्दैः, दिविस्तुता मोदचयेन साध्वी ।
प्रसूस्तनूजाय ददाति सौख्यं, नमोस्तु ते कल्पलतेव मातः ॥२॥

मान्ये दयार्द्रहृदये करुणास्वरूपे,
पूज्ये पवित्रचरिते महनीयमूर्त्ते ।
वन्द्ये तनूजहितकारिणि शुद्धभावे,
मातर्नमामि तव पादसरोज युग्मम् ॥ ३ ॥

मातस्त्वदीय करुणाभरित पवित्रं
प्रेमावलोक्य हृदयं बहुलज्जते मे ।

ज्ञान के पूर्ण समुद्र और प्रणाम करनेके योग्य श्रीगुरुदेवजी के चरण को मैं श्रद्धा और भक्तिसे प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

पितासे भी बढ़कर माता पूजाके योग्य है क्योंकि वह गर्भ में धारण करती और पालन करती है इस कारण माता के समान तीनों लोकमें कोई गुरु (पूजाके योग्य) नहीं है ॥ १ ॥ पृथिवी में सब मनुष्य और स्वर्ग में देवता लोग आनन्द से जिसकी स्तुति करते हैं ऐसी पतिव्रता माता कल्पलता के समान लड़कों को सुख देती है। हे माता तुमको नमस्कार है ॥ २ ॥ हे मान के योग्य, दया से भरे हृदयवाली करुणा के स्वरूप, पूजा के योग्य, पवित्र चरित्रवाली, पूजाके योग्य शरीरवाली, वन्दना करने के योग्य, पुत्रका हित करनेवाली और सच्चा प्रेम करनेवाली, माता ! तुम्हारे दोनों चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ हे माता ! दया से भरे और पवित्र तुम्हारे प्रेमको देख कर मेरा मन बहुत लज्जित

तस्मै न निष्कृतिमहं नहि कर्तुमीशे,
यत् स्वार्थहीनमुपकारकृतं कृतं ते ॥ ४ ॥
मातस्त्वच्चरणारविन्द युगलं ध्यायाम्यहं भक्तिमान्,
उद्भूतः प्रविधायिनी बहुदिनं धृत्वास्वकीयोदरं ।
त्वं मे पालनकारिणी च सुखदैः सम्वर्द्धिनी सेवनैः,
सत्यप्रेमनिदर्शिनी च जगतां पूज्या प्रणम्या सदा ॥५॥

पितृवन्दना—पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व्व देवताः ॥१॥
तीर्थ स्नान तपो होम जपादि यस्य दर्शनम् ।
महा गुरोश्च गुरवे तस्मै पित्रे नमो नमः ॥२॥
पूज्यस्य पुण्यचरितस्य कृपाकरस्य,
ब्रह्माच्युतेशसदृशस्य मुनीश्वरस्य ।

होता है। मैं उस प्रेमका बदला नहीं दे सकता जो तुमने मेरे उपकार ही के लिये किया है ॥ ४ ॥ हे माता! मैं भक्ति से तुम्हारे दोनों चरण कमलों का ध्यान करता हूं तुमने मुझको बहुत दिनों तक अपने पेटमें रख पार मेरा जन्म दिया, पालन किया, अनेक प्रकार के सुख देनेवाली सेवाओं से मुझे बढ़ाया और सच्चे प्रेमको दिखलाया इस कारण तुम जगत से पूजा तथा प्रणाम करनेयोग्य हो ॥ ५ ॥

पिता धर्म है पिता स्वर्ग है पिता ही परम तप है। पिता के प्रसन्न होने से सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥ तीर्थ यात्रा, गङ्गा यमुना आदि पवित्र नदियों में स्नान करना, तप, होम, जप, आदि का पुण्य जिसके दर्शनही से होजाता है उस महा गुरु के गुरु पिताजी को नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ पूजाके योग्य, पवित्र चरित्रवाले, कृपा करनेवाले, ब्रह्मा विष्णु शिव के समान, मुनियों में प्रधान, नित्य

नित्यं दयार्द्रहृदयस्य पवित्रमूर्त्तेः,
वन्दे सदैव जनकस्य पदारविन्दम् ॥३॥
स्नेहेन येन सुखभोजनवस्त्रदानैः,
देहं विवर्द्धितमलुब्धहृदा यथेष्टम् ।
प्रत्यक्षदेववपुषश्चलतीर्थमूर्त्तेः
पादारविन्दयुगलं प्रणमामि तस्य ॥ ४ ॥
नित्यं भोजनवस्त्रदाननिरतं सद्भावपूर्णादरम्,
दातारं सकलेप्सितस्य सततं संसारदीक्षाप्रदम् ।
सत्यप्रेमभरं दयार्द्रहृदयं प्रत्यक्षदेवं गुरुम्,
वन्देऽहं जनकं शरण्यचरणं पूज्यं परं प्राणिनाम् ॥५॥

दयासे पूर्ण हृदयवाले, और पवित्र स्वरूपवाले, पिताके चरण कमल को सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ जिस पिताने लोभ छोड़ कर सुख देनेवाले भोजन और वस्त्र देकर प्रेम से इस देह को अच्छी तरह से बढ़ाया उस प्रत्यक्ष देवकी मूर्त्ति और चलनेवाले तीर्थ के स्वरूप पिता के दोनों चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ नित्य भोजन और वस्त्र देनेमें तत्पर, सच्चे प्रेम से भरे उदरवाले, सब प्रकार की इच्छाओं को सदा पूर्ण करनेवाले, संसार की रीति नीति सिखलानेवाले, सच्चे प्रेम से पूर्ण दया से भींगे हृदयवाले, प्रत्यक्ष देव, ज्ञान देनेवाले, शरण में आये हुए जनको रक्षा करनेवाले और प्राणी (जीव) मात्र के परम पूज्य पिताको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

परिशिष्टम्

सदाचार

हाथ पाँव आदि में मट्टी वा गोवर लगाकर जल द्वारा धोने से, स्नानादि करने से केवल बाहरी शुद्धि होती है जो शौच का एक अंश मात्र समझी जाती है (अद्भि: गात्राणि शुध्यन्ति) इसके करने से शारीरिक लाभ अधिक है तथा नहीं करने से पवित्रता नष्ट होती है, मनुष्य कम दिनों तक जीवन का स्वाद लेता है, और जीता भी है तो नाना प्रकार की बिमारियाँ झेलता है। लेकिन सब से बढ़कर लोक परलोक दोनों में सुख देनेवाला शौच अन्त:करण को शुद्ध करना है। यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि पहले कही हुई वाह्य शुद्धि में यदि कुछ त्रुटि होय भी तो वह क्षन्तव्य है कारण यह कि उसका दु:ख यह शरीर खुद यहीं भोग लेता है। परन्तु अन्त: शुद्धि में अवहेला करने से मनुष्य आत्म घातकी होता है कारण यह कि उस अवहेला का दुखदायी फल आत्मा को सहना पड़ता है जो आत्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म का अंश है। अन्त: शुद्धि क्या है इसका पूरा वर्णन इस क्षुद्र संग्रह में अँटाना कठिन है। किन्तु संक्षेप में इतना समझ रखना चाहिये कि सच बोलना,

अपनी इन्द्रियों को विषय वासनाओं से हटाए रखना, सब जीवों पर दया रखना आदि, अन्तः शौच में प्रधान हैं। यथा—

वाचां सत्यं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया शौचम् एतच्छौचं परार्थिकम्॥

कहने का तात्पर्य यह है कि आचार वा सदाचार को संकीर्ण अर्थ में केवल पेखाना वा पेशाब के बाद हाथ पाँव धो लेना, कुल्ला करना, दातौन करना वा स्नान करना, बात बात में हाथ पांव को धोते रहना वा स्नान करते रहना आदि में ही व्यवहार नहीं करना चाहिये, किन्तु इन्हें आचारका एक अंशमात्र समझ कर सत्य, दया, आमता, न्याय, विनय, अक्रोध, क्षमा, दम, सन्तोष, विद्या, धैर्य आदि से मनको शुद्ध रखना, (जो अन्तः शुद्धि है) सदाचार का प्रधान अङ्ग मानना चाहिये यही प्रातःस्मरणीय पुण्यश्लोक महर्षियों का सदाचार के विषय में मुख्य सिद्धान्त है।

द्विजाति कर्म

(मनुसंहिता से संक्षेप में)

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः त्रयो वर्णा द्विजातयः॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥ १॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं इन्द्रियाणां च संयमः ॥
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥२॥
सर्वेषामपि चैतेषां आत्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥
तद्ध्यग्रं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥३॥
अध्यापनं अध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥४॥
षण्णान्तु कर्मणामस्य त्रीणिकर्माणि जीविका ॥
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्चप्रतिग्रहः ॥५॥
प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययनमेव च ॥
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥६॥
पशूनां रक्षणं दानं इज्याध्ययनमेव च ॥
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥७॥

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति कहे जाते हैं ॥ किसी जीवको न मारना, सच बोलना, चोरी न करना, और इन्द्रियों को अपने बशमें रखना यह साधारण धर्म चारो वर्ण (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र) के लिये मनुजीने कहे हैं ॥ १ ॥ वेदका पढना, तप करना, ज्ञान रखना, इन्द्रियों को अपने बशमें रखना किसी जीवको न मारना और गुरुकी सेवा करना ये सब परम कल्याण देनेवाले हैं ॥ २ ॥ और सब से बढ़ कर आत्म ज्ञान है। कारण यह कि आत्म ज्ञान सब विद्याओं में प्रधान है और उसीसे मोक्ष मिलता है ॥ ३ ॥ पढ़ाना पढ़ना यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना और दान लेना ब्राह्मणों का धर्म है ॥ ४ ॥ इन छः कामों में तीन काम ब्राह्मण की जीविका के लिये हैं यज्ञ कराना पढ़ाना और पवित्र जाति से दान लेना ॥ ५ ॥ प्रजाओं की रक्षा करना दान देना यज्ञ करना पढ़ना और संसारी सुखों में इच्छा न रखना क्षत्रियों का धर्म है ॥ ६ ॥

शस्त्रास्त्रभृत्वं क्षत्रस्य वणिक् पशु कृषिर्विशः ॥
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥८॥
वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ॥
वार्त्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥९॥
अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ॥
जीवेत् क्षत्रियधर्मेण सह्यस्यप्रत्यनन्तरः ॥१०॥
उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथंस्य दिति चेद्भवेत् ॥
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥११॥
सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ॥
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥१२॥

पशुओं की रक्षा करना दान देना यज्ञ करना पढ़ना दुकान करना और ब्याज (सूद) का काम करना वैश्य का धर्म है ॥ ७ ॥ प्रजाओं की रक्षा के लिये अस्त्र शस्त्र धारण करना क्षत्रियों की वृत्ति है पशु पालन, खेती करना, और वाणिज्य (खरीदना बेचना) वैश्य की जीविका है। और दान यज्ञ तथा पढ़ना दोनों के ही धर्म कर्म के बीच गिना गया है ॥ ८ ॥ वेद पढ़ाना ब्राह्मण का, प्रजा पालन क्षत्रियों का, वाणिज्य और पशु पालन वैश्यों का उत्तम धर्म है ॥ ९ ॥ यदि ब्राह्मण नियम पूर्व्वक पढ़ाना आदि धर्मों से कुटुम्ब के बहुत हो जानेके कारण अपनी जीविका न कर सके तो नगर गाँव रक्षा आदि क्षत्रिय धर्म से जीविका करे क्योंकि यही उसके समीप का धर्म है ॥ १० ॥ जब अपनी वृत्ति और क्षत्रिय वृत्ति से भी ब्राह्मण को जीविकाका निर्वाह होना कठिन हो जाय तब खेती वाणिज्य आदि वैश्यके धर्मसे जीविका करे ॥ ११ ॥ हिस्सा, बिना माँगे पवित्र मनुष्य से धन का मिलना, खरीदना, जीतना, धान्य आदि का बढ़ाना, खेती करना, बेंचना और अच्छे कामों से धन कमाना इन सातों प्रकार से धन प्राप्त करने को धर्म धन कहते

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः ॥
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥ १३ ॥
अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ॥
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥१४॥
एनस्विभिरनिर्णिक्तै नार्थं किञ्चित् सहाचरेत् ॥
कृत निर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥१५॥
अनुक्तनिष्कृतीनान्तु पापानामपनुत्तये ॥
शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥१६॥

राजकर्म

(मनुसंहिता से अति संक्षेप में)

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ॥
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥ १ ॥

हैं ॥ १२ ॥ विद्या, कारीगरी, नौकरी, सेवा, गोरक्षा, वाणिज्य खेती, थोड़ी प्राप्ति में सन्तोष, भिक्षा वृत्ति, और व्याज का काम करना इन दसों से मनुष्य की जीविका होती है ॥ ११ ॥ शास्त्र में कहे हुए धर्म को न करने, निन्दित कार्य्य और इन्द्रियों के विषय में अत्यन्त आसक्त होने पर मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है ॥ १४ ॥ प्रायश्चित्त न करनेवाले पापी के साथ दान प्रतिग्रह आदि किसी तरह का सम्बन्ध न रखे। परन्तु प्रायश्चित्त करने पर उसकी कदापि निन्दा न करे ॥ १५ ॥ जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं कहा गया उन पापों को छुड़ाने के लिये पापी की सामर्थ्य और पापकी गुरुता वा लघुताका विचार करके प्रायश्चित्त की कल्पना करे ॥ १६ ॥ जगत में राजा न होने से सब कोई भय से व्याकुल होते हैं इस कारण

इन्द्रानिल यमार्काणां मग्नेश्च वरुणस्य च ॥
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥२॥
सर्वो दण्डजितोलोको दुर्लभोहि शुचिर्नरः ॥
दण्डस्यहि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥३॥
तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते ॥
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥४॥
मौलान् शास्त्रविदः शूरां लब्धलक्षान् कुलोद्गताम् ॥
सचिवान् सप्तचाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥५॥
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धि विग्रहम् ॥
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ६ ॥

जगत की रक्षा के लिये परमेश्वरने राजा को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ इन्द्र वायु यम सूर्य्य अग्नि वरुण चन्द्रमा कुबेर इन आठों दिक्पालों के सार भूत अंश से राजा को को ईश्वरने बनाया ॥ २ ॥ मनुष्य केवल दण्ड ही के भय से न्याय पथ में चलते हैं। क्योंकि निर्दोष लोग जगत में दुर्लभ हैं ॥ यह चराचर जो भोग्य भोगने मे समर्थ होता है उसमें दण्ड का भयही कारण है ॥ ३ ॥ यदि राजा पूरी रीति से विचार कर दण्डविधान करता है तो धर्म अर्थ और काम इन त्रिवर्गों की वृद्धि होती है। क्षुद्रचित्तवाला भोगाभिलाषी और क्रोध आदि के वश में रहनेवाला राजा दण्ड के सहारे आप ही नष्ट होता है ॥ ४ ॥ वंश परंपरासे राजकर्मचारी वेदादि धर्मशास्त्रों का जाननेवाला स्वयं शूर तथा युद्धविद्यामें भली भाँति निपुण सत्कुल में उत्पन्न और परीक्षा में ठीक, ऐसा सात या आठ मन्त्री राजा अपने पास रक्खे ॥ ५ ॥ सन्धि, विग्रह, चार प्रकार की सेना रखना, राजधन बढ़ाना, प्रजाकी रक्षा करना, और अर्जित धन योग्य पात्रों को देना इत्यादि का विचार उन मन्त्रियों

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥७॥
सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ॥
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु ॥८॥
अध्यक्षान् विविधान् कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः ॥
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥९॥
नित्यमुद्यतदण्डःस्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ॥
नित्यं सम्वृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥१०॥
नास्य छिद्रं परो विद्याद् विद्याच्छिद्रं परस्य तु ॥
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥११॥

के साथ करे ॥ ६ ॥ सब शास्त्रों का जाननेवाला स्वरूप तथा चेष्टा के देखनेही से दूसरे के मन के भावको जानने में समर्थ, घूस न लेनेवाला चतुर और अच्छे कुलमें उत्पन्न मनुष्य को राजा दूत बनावे ॥ ७ ॥ शास्त्रमें कही हुई विधि के अनुसार वर्ष के अन्तमें विश्वासी कर्मचारी के द्वारा राजा प्रजा से कर संग्रह करे। और राज्यमें रहनेवाली प्रजा के साथ पिता के समान व्यवहार करे ॥ ८ ॥ राज्य के अनेक प्रकार के कार्यों को करने के लिये पृथक् पृथक् स्थानमें जो बहुत से लोग नियुक्त रहते हैं उन लोगों के कार्यों को विशेष रीति से जानने के लिये बुद्धिमान, कार्य्यमें कुशल, और पण्डित लोगों को नियुक्त करना उचित है ॥ ९ ॥ सदा सेनाको उत्तम शिक्षा देकर तैयार रखना सदा पुरुषार्थ दिखाना विचार और दूतों के कार्यों को छिपाए रखना सदा शत्रुओं के छिद्रों को खोजते रहना राजाके मुख्य कार्य्य हैं ॥१०॥ यत्नपूर्व्वक अपने छिद्रों को छिपाना और पराए छिद्रों को दूतों के द्वारा जानना राजाके कर्त्तव्य हैं। और जैसे कछुआ अपने अङ्गों को छिपा लेता है वैसेही राजा भी मंत्री आदि राजके अङ्गों को दान मानसे अपने वशमें करे और दैवी घटना से

बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्चपराक्रमेत् ॥
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्चविनिष्पतेत् ॥१२॥
एवं विजयमानस्य येऽस्यस्युःपरिपन्थिनः ॥
तानानयेद्वशंसर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः ॥१३॥
दूतसम्प्रेषणञ्चैव कार्य्यशेषं तथैव च ॥
अन्तःपुरप्रचारञ्च प्रणिधीनाञ्चचेष्टितम् ॥१४॥
कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म्म पञ्चवर्गञ्च तत्त्वतः ॥
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥१५॥
मध्यमस्य प्रचार ञ्च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ॥
उदासीन प्रचार ञ्चश्चो यैव प्रयत्नतः ॥१६॥

प्रकृति भेद होने पर उसकी शान्ति का उपाय करे ॥११॥ बगुलेकी भाँति अर्थ की चिन्ता करे सिंह की भाँति पराक्रम दिखावे और बाघ की तरह शिकार करे तथा दुर्बल होने पर शशक की भाँति भाग जाय ॥१२॥ इस प्रकार राजाके भली भाँति तैयार हो कर जय के लिये प्रवृत्त होने पर जो लोग विरोध करें उन्हें साम दान भेद और दंड इन चार प्रकार के उपायों से अपने वशमें करे ॥१३॥ गुप्त रीति से दूसरों के राज्यमें दूत भेज, आरम्भ कार्य्य को पुरा करे, सखियों से महल में रहनेवाली स्त्रियों के व्यवहार को जाने तथा अन्य दूतों को नियुक्त करके अपने भेजे हुए पराये राज्यमें गये हुए गुप्त दूतों की चेष्टाओं को जानना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है ॥१४॥ आय, व्यय, कर्मचारियों का आचरण, विरुद्ध कर्मों का निषेध, सन्दिग्ध कार्य्यकी व्यवस्था, व्यवहार दृष्टि, दण्ड, पापका प्रायश्चित्तइन आठ प्रकारके राजकार्यों पर और कापटिक उदासित गृहपतिव्यञ्जक वैदेहिकव्यञ्जक और तापसव्यञ्जक इन पाँच प्रकार के अनुराग विराग और निकटवर्त्ती राजाओं की अवस्थापर राजाओं को विशेष मन लगाना उचित है ॥१५॥ अपने से छोटे बलवाले राजाके बल को, अपने को जीतने की इच्छा

एताः प्रकृतयोमूलं मण्डलस्य समासतः ॥
अष्टौचान्याः समाख्याताः द्वादशैव तु ताःस्मृताः ॥१७॥
अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः ॥
प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥१८॥
अनन्तरमरिं विद्या दरिसेविनमेव च ॥
अरेरनन्तरं मित्र मुदासीनं तयोः परम् ॥ १९ ॥
तान् सर्वानभिसन्दध्यात् सामादिभि रुपक्रमैः ॥
व्यस्तैश्चैवसमस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥२०॥
सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासन मेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणां श्चिन्तयेत्सदा ॥२१॥
आयत्यां गुणदोषज्ञ स्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ।
अतीते कार्य्यशेषज्ञ शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥२२॥

रखनेवाले राजा की चेष्टा को, उदासीन के बल को और शत्रु के बल को परीक्षा करना राजा को उचित है ॥१६॥ इन चारों वा मित्र अरि मित्र पार्ष्णीग्राह आक्रन्द पार्ष्णीग्राहसार आदि आठ प्रकृति राजा को द्रष्टव्य हैं ॥१७॥ इन बारह प्रकृतियों में से प्रत्येक के अमात्य, राज्य, किला, अर्थ, दण्ड, ये पाँच पाँच और बारह प्रकृति सब समेत बहत्तर प्रकृति दूसरे राज्य विषय में विचार सम्बन्ध में प्रधान रूप से गिनी जावेंगी ॥१८॥ शत्रुता करनेवाले और उन शत्रुओं से मित्रता करनेवाले को शत्रु जानना, अपने स्वाभाविक शत्रु से शत्रुता रखनेवाले को मित्र समझना इन दोनों से जो भिन्न हो अर्थात् किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखे उस को उदासीन समझना ॥१९॥ इन्हें साम, दाम, भेद, दण्ड, तथा पुरुषार्थ इत्यादि सबसे अथवा इनमें से किसी एकही से अपने वशमें करे ॥२०॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध, आश्रय इन छगुणों को राजा स्थिरभाव से विचारे और इन्हें उपयुक्त स्थान में अवलम्बन करे ॥२१॥ जो राजा

यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।
तथा सर्वं सम्विदध्या देषसामासिकोनयः ॥२३॥
दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्त नि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ २४ ॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशकोगणः ॥२५॥
पैशून्यं साहसं द्रोह ईर्षा ऽसूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥२६॥
प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्चहेतुभिः ।
अष्टादशसुमार्गेषु निवद्धानि पृथक् पृथक् ॥२७॥

कोई उपाय अवलम्बन करनेके पहले उससे क्या मंगल या अमङ्गल होगा—समझ सकता है उपस्थित कार्य्यों को विशेष बुद्धिमानी के साथ शीघ्र पूरा करता और अपने जीवन की भूतपूर्व्व घटनाओं को भलीभाँति विचार के देखता है वह कदापि शत्रुओं से पराजित नहीं होता ॥२२॥ राजाको अपना कार्य्य ऐसी उत्तम रीति से करना योग्य है कि मित्र उदासीन वा शत्रु राजा—कोई भी प्रबल होके उसे पीड़ित न कर सके राजनीति में संक्षेप से यही वर्णित है ॥२३॥ जूआ खेलना आदि दश काम के व्यसन और चुगली आदि आठ क्रोध के व्यसन हैं इन अठारहों दुस्तर व्यसनों को राजा छोड़दे क्योंकि यद्यपि ये प्रथम सुखद हैं परन्तु परिणाम में दुसाह कष्टदायक हैं ॥२४॥ मृगया, जूआ खेलना, दिनमें सोना पराया दोष कहना, स्त्रियों में आसक्ति नशेबाजी, बाजा बजाना, नाचना, गाना और वृथा घूमना, ये दसों काम से उत्पन्न दोष कहलाते हैं ॥२५॥ चुगली, दुःसाहस, द्रोह, ईर्षा, असूया (अच्छेको भी बुरा बताना) दूसरे की वस्तु हरना कठोर वचन बोलना, और अत्यन्त ताड़ना, ये आठों क्रोध से, उत्पन्न दोष हैं ॥२६॥ अठारह प्रकार के विवाद मूलक उन व्यवहारिक कार्य्यों में तदिम देशजाति और कुलाचार के अनुसार हेतु और शास्त्रीय साक्षी लेख आदि

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।
सम्भूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म्म च ॥२८॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥२९॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयञ्चसाहसञ्चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ३० ॥
स्त्रीपुंधर्मोविभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥३१॥
एवं धर्म्म्याणि कार्याणि सम्यक् कुर्वन् महीपतिः ।
देशानलब्धान् लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥३२॥
सम्यङ् निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ।
कण्टकोद्धरणे नित्यं आतिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥३३॥
स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥३४॥

प्रमाणों की पृथक् पृथक् विचार करे ॥२७॥ विवाद विषयमें प्रथम ऋणदान, निक्षेप अस्वामि विक्रय, सम्भूय, समुत्थानदत्ता, प्रदानिक, वेतन दान, संविद, व्यतिक्रम, क्रय, विक्रयानुशय, स्वामिपाल, विवाद, सीमा विवाद, वचनकी कठोरता, चोरी, साहस, स्त्री संग्रहण, स्त्रीपुरुष धर्म, विभाग जुआ और आह्वय ये अठारह पद व्यवहार विषय में वर्णित है ॥ २८—३१ ॥ राजा धर्म पूर्वक इसी भाँति व्यवहार करते हुए अप्राप्त देशोंके पानेकी इच्छा करे और प्राप्त राज्यका प्रतिपालन करे ॥ ३२ ॥ शास्त्रमें जैसा कहा है—राजा सब लोगोंके सहित किला बनाकर वहाँ वास करे और साहसिक इत्यादि कण्टक रूपी छोटे छोटे शत्रुओं को नष्ट करनेमें सर्वदा यत्न करे ॥ ३३ ॥ राजा मन्त्री पुर राज्य कोष दण्ड और मित्र ये सातों राज्यके अङ्ग हैं

चारणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम्।
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान् महीपतिः ॥२५॥
कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥२६॥
कलिःप्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युदयस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥२७॥
इन्द्रस्यार्कस्यवायोश्च यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृप श्चरेत् ॥२८॥
अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम्।
स्थापयेदासनेतस्मिन् खिन्नःकार्य्येक्षणेनृणाम् ॥२९॥

इसलिये राजाको सप्ताङ्ग कहते हैं ॥ २४ ॥ दूतोंको उत्साह देकर और अपने कार्यों को देख कर राजा सदा शत्रु शक्ति और अपनी शक्तिको मालूम करे ॥ २५ ॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग—ये राजाही से बने हैं इस कारण राजाको युग कहते हैं ॥ २६ ॥ जब राजा प्रजाकी श्रीवृद्धिके विषयमें नैन बंद करके सोता रहता है तब कलियुग है, जब राजाके विषयमें जाग्रत दृष्टिसे देखता है, तब द्वापर युग, जब राजकार्य करनेके लिये प्रस्तुत रहता है तब त्रेता और जब राजा शास्त्रके अनुसार सब कार्यों को करते हुए स्वच्छन्द विचरता रहता है तब सतयुग है ॥ २७ ॥ राजा इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र, अग्नि, और पृथिवी की भांति प्रजाके साथ वर्ताव करे जैसे इन्द्र पानीसे तृप्त करता है वैसेही अपनी प्रजाको प्रसन्न रखे, सूर्य जैसे रस खींचता है वैसेही प्रजासे मालगुजारी वसूल करे, हवाकी तरह घुसकर दूतोंसे सब का पता ले, न्याय करनेमें यमराज की भांति रहे, वरुण की तरह पापियों को बांधे, चन्द्रमा की भांति प्रजा को शान्ति दे, पापियों के लिये अग्नि के तुल्य प्रचण्ड रहे, पृथ्वी की तरह सबको बराबर धारण करे ॥ २८ ॥ जब राजा

विद्वांसःकवयो भट्टा गायकाः परिहासकाः।
इतिहास पुराणज्ञाः सभा सप्ताङ्गसंयुता ॥४०॥
पात्रे त्यागो गुणेरागो भोगो परिजनैः सह ॥
भाववोद्धा रणे योद्धा प्रभुःपञ्चगुणो भवेत् ॥४१॥
कुलशील गुणोपेतः सर्व धर्म परायणः।
प्रवीणःप्रेषणाध्यक्षो धर्माध्यक्षो विधीयते ॥४२॥
धर्मशास्त्रार्थ कुशला कुलीनाःसत्यवादिनः।
समाःशत्रौचमित्रे च नृपतेः स्युःसभासदाः ॥४३॥
इदमेवनरेन्द्राणां स्वर्गद्वारमनर्गलम्।
यदात्मनः प्रतिज्ञा च प्रजा च परिपाल्यते ॥४४॥

राजकाज देखते देखते थक जाय और अच्छीतरह राजकाज देख न सके तब अपने स्थानमें धर्मात्मा विद्वान् इन्द्रियको वशमें रखनेवाले अच्छे कुलमें उत्पन्न प्रधान अमात्य बैठावे ॥ ३९ ॥ विद्वान् कवि भाट गवैया दिल्लगीवाज इतिहास जाननेवाला और पुराण जाननेवाला, इन सातों को राजा अपनी सभामें रखे ॥ ४० ॥ योग्य पुरुषको दान देना, गुण पर सदा प्रसन्न रहना अपने परिवारके साथ सुखभोगना, दूसरेके मनकी बात जानना और लड़ाईमें युद्ध करना, ये पांच स्वामीके गुण हैं (अर्थात् ये पांचों गुण राजामें होना आवश्यक है) ॥ ४१ ॥ अच्छे कुलमें उत्पन्न अच्छे शील और गुणों से पूर्ण सब धर्मोंमें भक्ति रखनेवाला और चतुर, इन गुणों से युक्त दूतों के भेजनेवाला, और धर्माधिकारी होना चाहिये ॥ ४२ ॥ धर्म शास्त्रको अच्छीतरह जाननेवाले कुलीन सच बोलनेवाले, शत्रु और मित्र पर बराबर दृष्टि रखनेवाले सभासद राजाकी सभामें रहना चाहिये ॥ ४३ ॥ यदि राजा अपनी प्रजा और प्रतिज्ञा का अच्छीतरह पालन करे तो यही राजाओंका स्वर्ग। अथा

उत्खातान् प्रतिरोपयन् कुसुमितांश्चिन्वन् लघून् वर्द्धयन् ।
अत्युच्चान् नमयन् नतान् समुदयन् विश्लेषयन् संहतान् ॥
क्षुद्रान् कण्टकिनो वहिर्निरसयन् म्लानान् पुनःसिंचयन् ।
मालाकारइव प्रयोगकुशलो राजा चिरं नन्दति ॥४५॥

वैश्यकर्म्म

(मनुसंहिता से अति संक्षेप में)

वैश्यस्य च प्रवक्ष्यामि यो धर्मो वेदसम्मतः ॥
दानमध्ययनं शौचं यज्ञश्च धनसञ्चयः ॥१॥
वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ॥
वार्त्तायां नित्य युक्तः स्यात् पशूनांचैव रक्षणे ॥२॥
मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥
गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घ बलाबलम् ॥३॥

स्वर्गका द्वार है ॥ ४४ ॥ उखड़े हुएको रोपे, फूलेहुए को चुनलेवे, छोटों को बढ़ावे, बहुत ऊंचेहुएको झुकावे, झुके हुएको उठावे, सटेहुएको अलग करे, छोटे छोटे कांटेवालों को निकाल देवे मुरझाए हुएको सींचे इस रीतिसे मालीके समान आचरण करने में चतुर राजा सदा आनन्द करता है ॥ ४५ ॥

मैं वैश्यों के उन धर्मों को कहता हूं जो वेदमें लिखे हैं। दानदेना, वेद पढ़ना, पवित्रतासे रहना, यज्ञ करना, और धन जोड़ना ये वैश्य धर्म हैं ॥ १ ॥ वैश्य जनेऊ होजाने पर विवाह करके खेती दुकानदारी और गौओं का पालन अच्छी तरह करे ॥ २ ॥ वैश्य मानिक, मोती, मूंगा, आदि जवाहिर सोना चांदी

बीजानां मुप्तिविच्चस्यात् क्षेत्र दोषगुणस्य च ।
मानयोगं च जानीयात् तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ४ ॥
सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ॥
लाभालाभञ्च पण्यानां पशूनां परिवर्द्धनम् ॥ ५ ॥
भृत्यानां च भृतिं विद्यात् भाषाश्च विविधा नृणाम् ॥
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ६ ॥
धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्टेद्यत्नमुत्तमम् ॥
दद्याच्च सर्वभूतानां अन्नमेवप्रयत्नतः ॥ ७ ॥

सामान्य नीति

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥ १ ॥

आदि धातु, कपड़ा, अतर फुलैल आदि सुगन्ध पदार्थ दूध, दही, घी, आदि रस. इन सबों का दाम तथा भाव अच्छी तरह जाने ॥ ३ ॥ वैश्य सब प्रकारके बीज बोने की रीति खेती का गुण दोष, मापनेवाले बरतन तथा सेर पँसेरी आदि तराजूसे तौल करनेको अच्छी तरह जाने ॥ ४ ॥ सब चीजों की उत्तमता, हीनता, देशों के गुण दोष बिक्रीके चीजों का फायदा नुकसान पशुओं के बढ़ानेका उपाय, मेहनत करने वाले मजदूरों की मजदूरी हर एक देशों की बोली, सब चीजोंके बेचनेकी जगह (अर्थात् यह चीज यहाँ बेचनेसे फायदा होगा और यहाँ बेचनेसे नुकसान होगा) और खरीदना बेचना इन बातों को वैश्य अच्छी तरह जाने ॥ ५—६ ॥ वैश्य अपने धर्मसे रुपयेकी व्यवहार करके बढ़ावे और सब जीवों को अच्छी तरह उचित समय पर अन्न दे ॥ ७ ॥

पृथिवीमें तीन रत्न (जवाहिर) हैं जल, अन्न, विद्या, किन्तु मूर्ख लोग पत्थरके

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽय विद्यते तव भारति ॥
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ॥ २ ॥
हन्तुर्न गोचरं याति दत्ता भवति विस्तृता ॥
कल्पान्तेऽपि न या नश्येत् किमन्यद्विद्यया समम् ॥ ३ ॥
अन्नदानं परं दानं विद्या दानमतः परम् ॥
अन्नेन क्षणिकातृप्ति र्यावज्जीवं च विद्यया ॥ ४ ॥
एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ॥
पृथिव्यां नास्तितद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणीभवेत् ॥ ५ ॥
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दावापि प्रवर्त्तते ॥
कर्णौतत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ ६ ॥
न तेन वृद्धोभवति येनास्य पलितं शिरः ॥
यो वै युवाप्यधीयान स्तंदेवा. स्थविरं विदुः ॥ ७ ॥

टुकड़े को रत्न कहते हैं ॥ १ ॥ हे सरस्वती । तुम्हारा खजाना बड़ा विचित्र है कि जो खरच करने से बढ़ता है और यतसे छिपा कर रखने से घटता है ॥ २ ॥ जिसको चोर न देख सके देनेसे बढ़े और जो कभी नष्ट न होय ऐसी एक विद्याही है दूसरी चीज नहीं ॥ ३ ॥ अन्नदान महादान है पर उससे भी बढ़ कर विद्यादान है, क्योंकि अन्नसे एक क्षन सुख मिलता है और विद्यासे जन्म भर ॥ ४ ॥ गुरु जो एक अक्षर शिष्यको पढ़ाता है पृथिवी में कोई ऐसा धन नहीं है जिस को देकर शिष्य उस से उऋण होवे ॥ ५ ॥ जहां गुरुका परीवाद (जो दोष उनमें है) अथवा निन्दा किस्यगत होती हो शिष्यको उचित है कि अपना कान बंद करले अथवा वहांसे चलदे ॥ ६ ॥ कोई शिरके बालों के पकजाने से बुड्ढा नहीं होसकता, यदि जवान भी अच्छी तरह पढ़ा लिखा हो तो वह बुड्ढा कहलाता

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्याभवति पञ्चमी ॥
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम् ॥ ८ ॥
अप्रगल्भस्य या विद्या कृपणस्य च यद्धनम् ॥
यच्च बाहुबलं भीरो र्व्यर्थमेव त्रयं भुवि ॥ ९ ॥
लालने बहवो दोषा स्ताड़ने बहवोगुणाः ॥
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताड़येन्नतु लालयेत् ॥१०॥
नाद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती भवेत् ॥
न व्यापारशतेनापि शुकवत्पाठ्यते बकः ॥ ११ ॥
षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ॥
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥ १२ ॥
जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥ १३ ॥

है ॥ ७ ॥ धन जन उमर काम और विद्या ये प्रतिष्ठाके स्थान हैं इनमें भी धनसे जन, जनसे उमर, उमरसे काम और कामसे विद्या अधिक प्रतिष्ठाका स्थान है ॥८॥ बहुत लजानेवाले की विद्या, कञ्जूसका धन और डरपोकका बल, ये तीनो बेफायदे हैं ॥ ९ ॥ प्यार करने से बहुत ऐब है, ताड़न (मारपीट) करने में बहुत फायदे हैं, इस कारण लड़के और शिष्यको ताड़ना करे प्यार न करे ॥ १० ॥ नालायकको कोई बात सिखलाई जायतो उससे कुछ फायदा न होगा, सैकड़ों उपाय करनेसे भी बगुला तोतेकी तरह नहीं पढ़ सकता ॥ ११ ॥ जो अपनी भलाई चाहे वह इन कामोंको न करे—बहुत सोना, बेकार बैठे रहना, बहुत डरना क्रोध करना आलस करना और सब कामोंमें बहुत देर करना ॥ १२ ॥ पैदा करनेवाला, जनेऊ पहनानेवाला (आचार्य—अथवा पुरोहित) विद्यापढ़ानेवाला, अन्नदेनेवाला, और

राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नी तथैव च ॥
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृता ॥१४॥
व्रजत्यधः प्रयात्युच्चै र्नरः स्वै रेव कर्मभिः ॥
अधःकूपस्य खनकः ऊर्द्ध्वं प्रासादकारकः ॥ १५ ॥
युक्तियुक्तं प्रगृह्णीयात् बालादपि विचक्षणः ॥
रवेरविषयं वस्तु किं न दीपः प्रकाशयेत् ॥१६॥
काव्यशास्त्रविनोदेन कालोगच्छति धीमताम् ॥
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥१७॥
जानन्ति पशवो गन्धात् वेदाज्जानन्ति पण्डिताः ॥
चराज्जानन्ति राजान श्चक्षुर्भ्यां मितरेजनाः ॥१८॥
विद्वानेवहि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ॥
नहि बन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् ॥१९॥

भयसे रक्षा करनेवाला, ये पांचों पिता हैं ॥ १३ ॥ राजाकी स्त्री गुरु की स्त्री मित्र की स्त्री, स्त्रीकी माता (सास) और अपनी माता ये पाँचों माता हैं ॥ १४ ॥ मनुष्य अपनेही किये हुए कामों से ऊँचा और नीचा होता है, कूएका खोदनेवाला दिन दिन नीचे चला जाता है और कोठा अटारी का बनानेवाला दिन दिन ऊपरही जाता है ॥ १५ ॥ बुद्धिमान पुरुषको उचित है कि लड़का भी यदि अच्छी बात कहै तो उसकी मान ले। क्या सूरजके नहीं रहने पर दीआसे काम नहीं चलता ? (अर्थात् चलता हैं) ॥ १६ ॥ बुद्धिमानों के समय पढ़ने लिखने में बीतते हैं। और मूर्खों के समय शौकीनी, नींद अथवा झगड़े में बीतते हैं ॥ १७ ॥ पशुओं को गन्धसे पण्डितों को वेदसे राजाओं को दूतसे और दूसरे साधारण लोगों को आँखों से सब चीजों का ज्ञान होता है ॥ १८ ॥ विद्वानके परिश्रम को विद्वानही जानता है (मूर्ख नहीं) गर्भिनी स्त्री को लड़का पैदा होनेके समय जो दुःख होता

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ॥
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥२०॥
माता शत्रुः पिता वैरी येनबालो न पाठितः ॥
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये वको यथा ॥२१॥
गङ्गापापं शशीतापं दैन्यं कल्पतरु स्तथा ॥
पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्तिसन्तो महाशयाः ॥२२॥
विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः ॥
आवेष्टितं महासर्पैः चन्दनं न विषायते ॥२३॥
यथाचित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः ॥
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता ॥२४॥
निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डाल वेश्मनि ॥२५॥

है उस दुःखको बाँझ स्त्री नहीं जानती ॥ १९ ॥ पण्डिताई और राजापन दोनों बराबर नहीं हो सकते राजाका आदर अपनेही देशमें होता है और पण्डित का आदर सब जगह ॥ २० ॥ वह माता शत्रु और पिता बैरी है जो अपने लड़के को नहीं पढ़ाता। वह लड़का सभाके बीचमें अच्छा नहीं लगता जैसे हंसों में बगुला ॥ २१ ॥ गङ्गा पापको चन्द्रमा तापको और कल्पवृक्ष दरिद्रता को दूर करता है। और सन्तलोग पाप ताप दरिद्रता तीनोंका नाश कर देते हैं ॥ २२ ॥ बुरे लोगोंके साथ में रहने पर भी साधुओंके चरित्र बिगड़ते नहीं, जैसे चन्दन के वृक्ष में बड़े बड़े साँप लिपटे रहते हैं तो भी पर चन्दन कदापि विषैला नहीं होता ॥ २३ ॥ जो बात मनमें हो वही कहै और जो कहै वही करे, सज्जनों का मन वचन और काम एकही होता है ॥ २४ ॥ अच्छे लोग गुणविहीन मनुष्य पर भी कृपा करते हैं। चन्द्रमा चाण्डालके घरसे अपना प्रकाश नहीं हटाते ॥ २५ ॥

सज्जना एव साधूनां प्रथयन्ति गुणोत्करम् ॥
पुष्पाणां सौरभं प्राय स्तनुते दिक्षु मारुतः ॥२६॥
मूर्ख चिन्हानि षड़िति गर्वो दुर्वचन मुखे ॥
विरोधो विषवादो च कृत्याकृत्यं न मन्यते ॥२७॥
न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः ॥
काकः सर्वरसान्भुंक्ते विना ऽमिध्यं न तृप्यति ॥२८॥
दह्यमानाः सुतीक्ष्णेन नीचाः पर यशोऽग्निना ॥
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥२९॥
तक्षकस्य विष दन्ते मक्षिकायाः विषं शिरः ॥
वृश्चिकस्य विषं पुच्छं सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ॥३०॥
काकः पक्षिषु चाण्डाल स्मृतः पशुषु गर्दभः ॥
नराणां कोऽपि चाण्डालः स्मृत सर्वेषु निन्दकः ॥३१॥
निन्दां यः कुरुते साधोः तथा स्वं दूषयत्यसौ ॥
खे भूतिं य स्त्यजदुच्चै र्मूर्ध्नि तस्यैव सा पतेत् ॥३२॥

सज्जन लोगही अच्छे लोगों के गुणको प्रकाशित करते हैं। हवाही फूलों की सुगन्ध को चारो तरफ फैलाती है ॥ २६ ॥ घमण्ड करना, किसीको गाली देना, वैर करना, कठोर बोलना, पाप और पुण्यको न मानना ये छ. मूर्खों के लक्षण हैं ॥ २७ ॥ नीच पुरुषों का मन पराई निन्दा किये विना प्रसन्न नहीं होता। कौआ सब रसों के खाने पर विना अशुद्ध पदार्थ (विष्ठा आदि) के तृप्त नहीं होता ॥ २८ ॥ नीच लोग दूसरे की बडाई रूपी आगसे जलते हैं।, और उसके बराबर नहीं हो सकते इस कारण उसकी निन्दा करते हैं ॥ २९ ॥ सापके दाँतमें मक्खीके सिरमें बिच्छूके पूँछ में और दुष्टको सब देहमें विष (जहर) रहता है ॥ ३० ॥ चिड़ियों में कौआ, पशुओं (चौपायों) में गदहा, और मनुष्यों में चुगलखोर चाण्डाल

दुर्जनो दोषमादत्ते पुरीषमिव शूकरः ॥
सज्जन श्च गुणग्राही, हंसः क्षीर मिवाम्भस ॥३३॥
दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ॥
उष्णो दहतिचाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥३४॥
यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्व मविवेकता ॥
एकैक मप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥३५॥
मक्षिका व्रणमिच्छन्ति धनमिच्छन्ति पार्थिवाः ॥
नीचाः कलहमिच्छन्ति शान्ति मिच्छन्तिसाधवः ॥३६॥
अपराधो न मे ऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम् ॥
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥३७
सन्तुष्यत्युत्तमाः स्तुत्या धनेन मद्दताधमाः ॥
प्रसीदन्ति जपैर्देवा वलिभिर्भूत विग्रहाः ॥३८॥

(डोम) है ॥ ३१ ॥ जो सज्जनों की निन्दा करता है वह अपनेही को खराब करता है। जो आसमान में धूली उड़ावेगा उसीके मुंहपर धूली गिरेगी ॥ ३२ ॥ दुर्जन ऐबको लेलेता है जैसे सूअर विष्टाको और सज्जन लोग गुणही लेते हैं जैसे हंस पानीमें से दूधको ॥ ३३ ॥ दुष्टसे किसी प्रकारका प्रेम अथवा संग न करना चाहिये। जैसे अङ्गारा गरम रहता है तो छूनेसे हाथ जलाता है और ठंढा होनेसे काला कर देता है ॥ ३४ ॥ जवानी धन मालिकाई और मूर्खता इन चारोंमें से एक भी हो तो अनर्थ होता है और जिसको चारो हैं उसका क्या कहना ? (अर्थात् वह सब कुछ बुराई कर सकता है) ॥ ३५ ॥ मक्खी फोड़ाकी, राजा धनकी, नीच लोग लड़ाई झगड़े की और सज्जन लोग शान्तिकी चाह करते हैं ॥ ३६ ॥ मैंने कुछ अपराध नहीं किया है ऐसा समझ कर निडर न होना चाहिये। कारण यह कि गुणवान पुरुषों को भी दुष्टोंसे सदा डर बना रहता है ॥३७॥

विश्वास प्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता ॥
अङ्कमारुह्य सुप्तानां हन्तुः किं नाम पौरुषम् ॥३९॥
मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्म्माणि कुर्वतः ॥
तत्रापि सम्भवन्त्येते मित्रोदासीन शत्रवः ॥४०॥
अहिं नृप च शार्दूलं वृटिंच बालकं तथा ॥
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान् न बोधयेत् ॥४१॥
विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधार्त्तो भयकातरः ॥
भाण्डारी प्रतिहारी च सप्तसुप्तान् प्रबोधयेत् ॥४२॥
मुकुटे रोपितः काचः चरणाभरणे मणिः ॥
न हि दोषोमणेरस्ति किन्तु साधोरविज्ञता ॥४ ॥
द्रवत्वात्सर्व लोहाना निमित्तान्मृग पक्षिणाम् ॥
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां संगतं दर्शनात्सताम् ॥४४॥

उत्तम जन प्रशंसा से अधम जन धनसे, देवता लोग जपसे, और भूत प्रेत आदि बलिसे प्रसन्न रहते हैं ॥ ३८ ॥ जो आदमी अपने ऊपर पूरा विश्वास रखता है उसको ठगनेमें कोई बुद्धिमानी नहीं समझना चाहिये। जो अपनी गोदमें सो गया है उसको मार देनेमें कौन बहादुरी है ? ॥ ३९ ॥ तप आदि अपने कामको करते हुए वनमें रहनेवाले मुनियोंके भी शत्रु मित्र उदासीन बन जाते हैं ॥ ४० ॥ साँप, राजा, सिंह, बर्रे, लड़का दूसरे का कुत्ता, और मूर्ख ये सात सो गये हों तो उनको न जगावे ॥ ४१ ॥ विद्यार्थी, नौकर, बटोही भूखा डरा हुआ भंडारी और दूत इन सातों में से यदि किसीको सोया हुआ देखे तो जगा देवे ॥ ४२ ॥ काच टोपी में और मणि पायजेब में लगाया जाय तो इसमें मणि का अपराध नहीं है किन्तु लगानेवाले की मूर्खता है ॥ ४३ ॥ धातुओं का पिघलने से मृग और पक्षियों का अन्न घास आदि कारण से मूर्खों का भय तथा लोभ से और सज्जनों का दर्शन से

मार्जारो महिषो मेषः, काकः कापुरुष स्तथा ॥
विश्वासात्प्रभवन्त्येते विश्वास स्तत्र नो हितः ॥४५॥
उत्तमा आत्मना ख्याताः पितुः ख्याताश्च मध्यमाः ॥
अधमा मातुलात् ख्याताः श्वशुराच्चाधमाधमाः ॥४६॥
उत्तमं स्वार्जितं भुक्तं मध्यमं पितुरर्जितम् ॥
कनिष्टं भ्रातृवित्तं च स्त्रीवित्तमधमाधमम् ॥४७॥
यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते ॥
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ॥४८॥
न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः ॥
एतदेव हि पाण्डित्यं यत्स्वल्पाद्भूरिरक्षणम् ॥४९॥
ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ॥
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥५०॥

सङ्ग होता है ॥ ४४ ॥ बिल्ली, भैंसा, मेढ़ा, कौआ और नीच पुरुष इनका विश्वास न करें, ये विश्वास करनेवालेका नाश कर देते हैं ॥ ४५ ॥ जो अपने नामसे प्रसिद्ध होते हैं वे उत्तम, जो पिताके नामसे प्रसिद्ध होते हैं वे मध्यम, जो मामाके नामसे प्रसिद्ध होते हैं वे अधम और जो ससुर के नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे अधम से भी अधम मनुष्य हैं ॥ ४६ ॥ अपना कमाया धन खाना उत्तम, बापका कमाया धन खाना मध्यम, भाई का कमाया धन खाना अधम और स्त्रीका कमाया धन खाना अधमसे भी अधम है ॥ ४७ ॥ जो निश्चयकाम छोड़कर अनिश्चय काम करते हैं उनका निश्चय काम नष्ट होजाता है और अनिश्चय तो नष्ट हुई है ॥ ४८ ॥ बुद्धिमान लोग थोड़ेके लिये बहुतको नहीं बिगाड़ते पण्डिताई यही है कि थोड़ा खर्च करके बहुत की रक्षा करें ॥ ४९ ॥ देना लेना, गुप्त बात कहना, सुनना,

कश्चित्कस्यचिदेवस्यात् सुहृद्विस्रम्भभाजनम् ॥
पद्मं विकाशयत्यर्कः संकोचयति कैरवम् ॥५१॥
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥
विनयो वंशमाख्याति देशमाख्यातिभाषितम् ॥५२॥
यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ॥
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषमन्यस्य रक्षसि ॥५३॥
दरिद्रान् भर कौन्तेय माप्रयच्छेश्वरे धनम् ॥
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥५४॥
उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ॥
षड़ेते यत्र वर्त्तन्ते तत्र देवः सहायकृत् ॥५५॥
उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ॥
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥५६॥

खाना और खिलाना ये छः प्रेमके चिन्ह हैं ॥ ५० ॥ स्वभावही से किसी पर किसीका बहुत विश्वास होजाता है। सूर्य्य कमलको प्रकाशित करता है और कोईं (सुफेद कमल जो रातमें खिलता है) को सुस्का देता है ॥ ५१ ॥ विश्वाससे प्रेम, देहसे भोजन, विनयसे कुल, और बोलीसे देश पहचाना जाता है ॥ ५२ ॥ तुम योग्य पुरुषोंको जो देते हो और जो रोज रोज खाते हो मैं जानता हूं कि वही तुम्हारा धन है और जो तुम्हारे किसी खर्चमें नहीं आता वह दूसरेका धन है तुम उसकी रखवाली करते हो ॥ ५३ ॥ गरीबोंका पालन पोषण करो धनियों को कुछ भी मत दो। दवा रोगीको फायदा करती है नीरोग को दवासे क्या? ॥ ५४ ॥ उद्योग साहस धीरता बुद्धि शक्ति पराक्रम ये छः जहां रहते हैं वहां ईश्वर सहायता करता है ॥ ५५ ॥ काम उद्योग करनेसे सिद्ध होते हैं मनमें सोचनेसे नहीं। सोए हुए सिंहके मुखमें हरिण आपहीसे नहीं घुस जाते

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ॥
तस्मात् पुरुषकारेण बिना दैवं न सिद्ध्यति ॥५७॥
संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि ॥
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥५८॥
अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्य्यसाधिका ॥
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥५९॥
एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम् ॥
सहैव दशभिःपुत्रै र्भारं वहति रासभी ॥६०॥
चिन्तनीया हि विपदा मादावेव प्रतिक्रियाः ॥
न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ॥६१॥
अनायके न वस्तव्यं न वसेद्बहुनायके ॥
स्त्रीनायके न वस्तव्यं न वसेद्बालनायके ॥६२॥

॥ ५६ ॥ पूर्व जन्ममें किये हुए कामोंको भाग्य कहते हैं। इस कारण विना उद्योग के भाग्य सिद्ध नहीं होता ॥ ५७ ॥ अपने घरके लोग छोटे या कमजोर हों तो भी उनके साथमें रहना अच्छा। धानका भूसा जब धानसे अलग होजाता है तो वह चावल नहीं जम सकता ॥ ५८ ॥ छोटी चीजोंको भी इकट्ठे रहनेसे बहुत से काम होजाते हैं। तिनकोंको बटकर जब डोरी बना देते हैं तब उससे बड़े बड़े मतवाले हाथी बँध जाते हैं ॥ ५९ ॥ एक ही अच्छे पुत्र को पैदा करके सिंही निडर होकर सोती है। और दस लड़कोंके साथ गधी सदा बोझा ढोती रहती है ॥ ६० ॥ विपत्ति के आनेके पहले ही उससे छूटनेका उपाय सोचना चाहिये। घर में आग लग जानेके बाद कुआ खोदना व्यर्थ है ॥ ६१ ॥ जहाँ मालिक न हो, अथवा बहुत मालिक हों या स्त्री मालिक हो वा लड़का मालिक हो वहां

ऋणशेषाग्निशेषश्च शत्रुशेषस्तथैव च ॥
पुनश्च वर्द्धते यस्मात् तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥६३॥
नदीनां नखिनां चैव शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम् ॥
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥६४॥
यस्मिन्देशे न सम्मानं न प्रीतिर्न च बान्धवाः ॥
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥६५॥
उदारस्य तृणं वित्तं शूरस्य मरणं तृणम् ॥
विरक्तस्य तृणं भार्या निस्पृहस्य तृणं जगत् ॥६६॥
जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः ॥
जनकः पञ्चमश्चैव जकाराः पञ्च दुर्लभाः ॥६७॥
क्वचिद्रुष्टः क्वचित्तुष्टः रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे ॥
अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः ॥६८॥

नहीं रहना चाहिये ॥ ६२ ॥ कर्ज, आग, और शत्रु इनमें थोड़ा भी बाकी नहीं रहने देना चाहिये, कारण यह कि यदि ये थोड़े भी बचे रहते हैं तो फिर बढ़ जाते हैं ॥ ६३ ॥ नदी, नखवाले (बाघ बानर आदि) सींगवाले (बैल भैंसा आदि) हाथमें हथियार रखनेवाले (सिपाही आदि) स्त्री, और राजाके वंशमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन सबका विश्वास न करना ॥ ६४ ॥ जिस देशमें आदर, प्रेम, भाई बन्धु और विद्याकी चर्चा न हो उस देशको छोड़ देना चाहिये ॥ ६५ ॥ उदार पुरुष धनको, वीर पुरुष मौतको, विरागी पुरुष स्त्रीको, और सन्तोषी पुरुष जगत्को बहुत तुच्छ समझता है ॥ ६६ ॥ जननी (माता) जन्मभूमि (जन्म होनेकी जगह) जाह्नवी (गङ्गा) जनार्दन (विष्णु) जनक (पिता) ये पाँचों जकार बड़े दुर्लभ हैं (अर्थात् कठिनतासे मिलते हैं) ॥ ६७ ॥ कभी नाराज, कभी खुश, छिन छिनमें नाराज और खुश, ऐसे चंचल चित्तवाले मनुष्यकी प्रसन्नतासे भी डर

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छठान् ॥
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥६९॥
अर्थनाशं मनस्तापं गृहेदुश्चरितानि च ॥
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥७०॥
अनारम्भोहिकार्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम् ॥
प्रारब्धस्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धिलक्षणम् ॥७१॥
धानधान्य प्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ॥
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥७२॥
यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रासं ग्रस्तं परिणमेच्चयत् ॥
हितं च परिणामे स्यात् तत्कार्यं भूतिमिच्छता ॥७३॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ॥
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥७४॥

लगता है ॥ ६८ ॥ पाखण्ड करनेवाले, पाप करके रुपया कमानेवाले, बिल्लीकी तरह घात लगानेवाले, दुष्ट, किसी कारणसे मेल रखनेवाले, और बगलेकी तरह ताक लगाए रहनेवालेके साथ बातचीत भी न करना चाहिये ॥ ६९ ॥ धनका नाश होना, मनका दुःख, घरका लड़ाई झगडा, किसीसे ठगा जाना, और कहीं बेइज्जती होना, इन सबोंको बुद्धिमान पुरुष किसीसे न कहे ॥ ७० ॥ किसी कामका आरम्भ न करना बुद्धिका पहला चिन्ह है और प्रारम्भ किये हुए कामका समाप्त करना बुद्धिका दूसरा चिन्ह है ॥७१ ॥ धन और अन्नके देने लेनेमें पढनेमें खानेमें और सब तरहके व्यवहारमें लज्जा छोड़ देनेवाला सुखी होता है ॥ ७२ ॥ जिस पदार्थको खा सके और उसको खाकर पचा सके ऐसीही चीजका खाना उचित है। जिसको कर सके और उससे फायदा उठा सके ऐसेही काम का करना मनुष्यको उचित है ॥ ७३ ॥ सुनकर, छूकर, देख कर, खाकर, सूंघकर औ

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ॥
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥७५॥
पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटी करोति ॥
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥७६॥
जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवम् ।
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि ॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे ।
तत् कोनाम गुणो भवेत् सुगुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः॥७७

मनुष्य प्रसन्न अथवा उदास नहीं होता वह जितेन्द्रिय कहलाता है ॥ ७४ ॥ इन्द्रियोंको अपने वशमें न रखना विपत्तिका रास्ता है (अर्थात् इन्द्रियोंको अपने वशमें न रखनेसे अनेक प्रकारके दुःख होते हैं) और इन्द्रियोंको जीत कर अपने वशमें रखनेसे सब प्रकारके सुख होते हैं इन दोनोंमेंसे तुमको जो रास्ता पसन्द हो उसी रास्तेसे जाव ॥७५॥ पापसे हटाता है अच्छे कामोंमें लगाता है छिपानेके लायक बातोंको छिपाता है गुणको जाहिर करता है विपत्तिमें भी साथ नहीं छोड़ता और समय पड़ने पर देता है। ये सब अच्छे मित्रके चिन्ह हैं ॥ ७६ ॥ लज्जा करनेसे मूर्ख, व्रत आदि पवित्र काम करनेसे पाखण्डी, पवित्र रहनेसे धूर्त्त, वीर होनेसे निर्दय, चुपचाप बैठनेसे पागल, प्रिय बचन बोलनेसे गरीब, तेजधारी होनेसे अभिमानी, बोलनेसे बकवादी, धीरताके साथ रहनेसे बलविहीन कहते हैं तो संसारमें गुणियोंके कौन ऐसे गुण हैं जिनमें दुष्टोंने कलङ्क न लगाया हो?

विद्यातीर्थे जगति विबुधाः साधवः सत्यतीर्थे ।
गङ्गातीर्थे मलिनमनसो योगिनो ध्यानतीर्थे ॥
धारातीर्थे धरणिपतयो दानतीर्थे धनाढ्याः ।
लज्जातीर्थे कुलयुवतयः पातकं क्षालयन्ति ॥७८॥
दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात् सुतो लालनात् ।
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयात् ।
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनया त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥७९॥

॥७७॥ इस जगतमें विद्वान विद्यारूपी तीर्थमें, सज्जन सत्यतीर्थमें, मलिन मनवाले (पापी) गङ्गा तीर्थमें, योगी ध्यान तीर्थमें, राजा तलवाररूपी तीर्थमें, धनी दान तीर्थमें, और कुलवधू लज्जा तीर्थमें, पाप धोते हैं ॥७८॥ खराब सलाहसे राजाका, सङ्गसे सन्यासीका, प्यारसे पुत्रका, बिना पढ़नेसे ब्राह्मणका, कुपुत्रसे कुलका, खलकी सेवासे शीलका, मद्य (शराब) से लज्जाका, नहीं देखनेसे खेतीका, परदेशमें रहनेसे प्रेमका, प्रेम न करनेसे मित्रताका, अनुचित दानसे सम्पत्तिका, और असावधानीसे धनका, नाश होता है ॥७९॥

उपदेश ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ १ ॥
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म्म कुर्व्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥२॥
ईश्वरः सर्व्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्व्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ॥ ३ ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्व्वभावेन भारत ।
तत् प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥४॥
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ ५ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ ६ ॥

जिससे जीवों की उत्पत्ति हुई जिससे यह जगत् फैला उसकी अपने कर्मों से पूजा करके मनुष्य सिद्धि पाता है ॥ १ ॥ अपना धर्म खराब हो तो भी दूसरे अच्छे धर्मों से (अपनाही धर्म) अच्छा है। अपना स्वाभाविक धर्म करता हुआ मनुष्य पापी नहीं होता ॥ २ ॥ हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहते हैं। और वही अपनी माया से सब प्राणियों को मानो चाक पर चढ़ाकर घुमाते रहते हैं ॥ ३ ॥ हे अर्जुन! तुम सबतरह उसी की शरण में जाओ। उसी की प्रसन्नतासे तुम शान्ति और मोक्ष पाओगे ॥ ४ ॥ इस जगत में दो पुरुष हैं एक क्षर (नष्टहोनेवाला) दूसरा अक्षर (नष्ट नहीं होनेवाला)। सब प्राणी क्षर और अचल पुरुष अक्षर कहलाता है ॥ ५ ॥ उत्तम पुरुष एक और ही है जो परमात्मा कहलाता है। वह तीनों लोक में फैल कर

समं सर्व्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ ७ ॥
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् ॥ ८ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णु शिवात्मिकाम् ।
स संज्ञायाति भगवान् एक एव जनार्द्दनः ॥ ९ ॥
ब्रह्म विष्णु शिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ।
प्रति विश्वे षु सन्त्येव ब्रह्मविष्णु शिवादयः ॥ १० ॥
येऽप्यन्यदेवता भक्त्या यजन्ते श्रद्धयान्वितम् ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजंत्यविधि पूर्वकम्॥ ११ ॥
अपिचेत्सदुराचारो भजते माम्नन्यभाक् ।
साधुरेव समन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ १२ ॥

सबका पालन करता है और धारण करता है ॥ ६ ॥ सब जीवों में बराबर होकर रहनेवाले, विनाशी में अविनाशी परमेश्वर को जो देखता है वही देखता है ॥ ७ ॥ इस ईश्वर को कोई अग्नि कहते हैं, कोई मनु कहते हैं कोई प्रजापति कहते हैं, कोई इन्द्र कहते हैं, कोई प्राण कहते हैं, और कोई तो नित्य ब्रह्म कहते हैं ॥ ८ ॥ वह एकही जनार्द्दन ईश्वर सृष्टि (जगत) को पैदा करने से ब्रह्मा, पालन करने से विष्णु, और संहार करने से शिव कहलाते हैं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णु और शिव की कोई गिनती नहीं है। हर एक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा विष्णु और शिव हैं ॥ १० ॥ (भगवान् कहते हैं कि) हे अर्जुन ! जो भक्ति और श्रद्धा से किसी दूसरे देवताओं की भी पूजा करते हैं वह मेरीही पूजा करते हैं किन्तु वह पूजा विधिपूर्वक नहीं है ॥ ११ ॥ यदि नीच चरित्रवाला भी पुरुष मुझ में

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ १३ ॥
कर्म्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्म्मणा ।
स्वकर्म्मणा हरेर्दासो जन्मादि रहितो भवेत् ॥ १४ ॥
स्वकर्म्मणा सर्व्वसिद्धिम् अमरत्वं लभेद्ध्रुवम् ॥
लभेत् स्वकर्म्मणा विष्णोः सालोक्यादि चतुष्टयम् ॥१५॥
सुरत्वञ्च मनुत्वञ्च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः ।
कर्म्मणा च शिवत्वञ्च गणेशत्वं तथैव च ॥ १६ ॥
अनेक जन्म सञ्जातं प्राक्तनं सञ्चितं स्मृतम् ।
क्रियमाणञ्च यत्कर्म्म वर्तमानं तदुच्यते ॥ १७ ॥
सञ्चितानां पुनर्मध्यात् समाहृत्य कियत्किल ।
देहारम्भे च समये काल पश्यतीव तत् ॥ १८ ॥

सच्ची भक्ति रख कर मेरा भजन करता है उसको साधु (अच्छा चरित्रवाला ही) समझ ना चाहिये कारण यह कि वह अच्छीतरह सच्ची भक्ति करता है ॥ १२ ॥ हे अर्जुन ! जो मेरा भक्त होता है वह शीघ्रही धर्मात्मा हो जाता है (अर्थात उसके हृदय से राग द्वेष निकल जाता है) और निरन्तर (नित्य) शान्ति (मुक्ति) को पाता है । मेरे भक्तों का नाश कभी नहीं होता ॥ १३ ॥ यह जीव कर्म्महो से इन्द्र होता है । कर्म्महो से ब्रह्माका पुत्र (मनु अथवा सप्तर्षि) होता है । कर्म्महोसे भगवान का दास होता है और कर्म्महो से जन्म मरण रहित भी होता है ॥ १४ ॥ मनुष्य अपने ही कर्म्म से सब सिद्धि पाता है, देवता बन जाता है, और कर्म्महो से विष्णु से चारों प्रकार का मोक्ष (सालोक्य १ सामीप्य २ सारूप्य ३ सायुज्य ४) पाता है ॥ १५ ॥ मनुष्य कर्म्महो से देवता, मनु, राजा, शिव, अथवा गणेश होता है ॥ १६ ॥ अनेक जन्म के किये हुए कर्म्म को सञ्चित कहते हैं और जो कर्म्म होरहे हैं उसे वर्त-

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्य्युपाञ्जनम्।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धकर्तॄणि देहिनाम्॥ १९॥
अद्भिः गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ २०॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥ २१॥
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धेन नॄनन्नै भूतानिबलिकर्म्मणा॥ २२॥
सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ २३॥
सत्वात् संजायते ज्ञानं रजसो लोभएव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥ २४॥

मान कहते हैं॥ १७॥ सञ्चित कर्मों के बीच से कुछ भाग लेकर जन्म होनेके समय काल धीरे धीरे उसका फल देता है उसे प्रारब्ध कहते हैं॥ १८॥ ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मट्टी, मन, जल, उबटन, हवा, कर्म, सूर्य्य और काल ये मनुष्यको पवित्र करनेवाले हैं॥१९॥ जलसे शरीर, सत्य से मन, विद्या तथा तपसे प्राण, और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है॥ २०॥ वेद पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण करना पितृ यज्ञ, हवन दैवकर्म, बलिदान भूतकर्म और अतिथि (आए हुए मनुष्य) की पूजा करना नृयज्ञ, कहलाता है॥ २१॥ वेदपाठ से ऋषियों को, विधिपूर्व्वक हवन करने से देवताओंको, श्राद्धसे पितरों को, अन्न से मनुष्यों को और बलि से भूतों को प्रसन्न करे॥ २२॥ हे अर्जुन! सत्व, रज, तम, ये तीनों गुण माया से उत्पन्न होते हैं और अव्यय (नाश और विकार रहित) आत्माको देहमें बांध देते हैं (अर्थात् सत्व, रज और तम, ये तीनों माया से उत्पन्न होकर आत्माको

ऊर्द्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ २५ ॥
सत्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्म्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ २६ ॥
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद् विवृद्धं सत्वमित्युत ॥ २७ ॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्म्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ २८ ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ २९ ॥
देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ ३० ॥

देहका सम्बन्ध करा के दुख सुख भोग कराते हैं) ॥ २३ ॥ सत्व से ज्ञान, रजसे लोभ और तम से प्रमाद, मोह तथा अज्ञान होता है ॥ २४ ॥ सत्व गुणवाले ऊपर, (स्वर्गमें) रजोगुणवाले मध्यमें (मर्त्यलोक में) और तमोगुणवाले नीचे (नरक में) रहते हैं ॥ २५ ॥ सत्व सुखमें प्राणियों को लगाता है । रज कर्ममें प्राणियों को लगाता है और तम ज्ञान को ढाँप कर प्राणियों को प्रमाद में लगा देता है ॥ २६ ॥ इस देह के सब द्वारों (इन्द्रियों) में जब प्रकाश होता है तब ज्ञान कहलाता है वही (ज्ञान) जब बहुत बढ़ जाता है तब सत्व कहलाता है ॥ २७ ॥ हे अर्जुन ! लोभ, प्रवृत्ति, काम करना, क्रोध, इच्छा, ये सब रजो गुणके बढ़ जाने से होते हैं ॥ २८ ॥ हे अर्जुन ! अन्धकार, सब कामों से उदासी, प्रमाद, मोह, यह सब तमोगुण के बढ़ जाने से होते हैं ॥ २९ ॥ इस देही की देह में जिस तरह, लड़कपन,

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३१ ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ३२ ॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवति अयुक्तेन मनसासदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥ ३३ ॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ ३४ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ३५ ॥

जवानी और बुढ़ापा एकके बाद एक होता है उसी तरह यह देह छोड़ कर दूसरी देह में जाना पड़ता है। धीर (बुद्धिमान्) उसमें दुःख नहीं करते ॥ ३० ॥ आत्माको रथी (रथके भीतर बैठनेवाला मालिक) समझो। देह को रथ समझो, बुद्धि को सारथी (रथ चलानेवाला कोचवान) समझो और मनको लगाम समझो ॥ ३१ ॥ इन्द्रियों (कान नाक आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और हाथ पैर आदि ५ कर्मेन्द्रिय) को घोड़ा समझो। विषय (संसार के सुख आदि) दौड़ने का स्थान समझो। आत्मा इन्द्रिय और मनके साथ में होकर सब सुख दुःख भोग करता है। ऐसा पण्डित लोग कहते हैं ॥ ३२ ॥ जो अज्ञानी होते हैं और मनको वशमें नहीं रखते हैं उनकी इन्द्रियां दुष्ट घोड़ों की तरह सारथी (आत्मा) के कहने में नहीं रहती ॥ ३३ ॥ जो ज्ञानी पुरुष हैं और अपने मनको वशमें रखते हैं उनकी इन्द्रियां अच्छे घोड़ों की तरह सारथी (आत्मा) के वशमें रहती हैं ॥ ३४ ॥ जो ज्ञानी होता है, अपने मनको वश में रखता है, और सदा पवित्र रहता है। वह उस

यस्त्वविज्ञानवान् भवति अमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ३६ ॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्यचेह च ॥ ३७ ॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ।
नामक्रिया निष्क्रमोऽन्नप्राशनं वपनक्रिया ॥ ३८ ॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्नि परिग्रहः ।
त्रेताग्नि संग्रहश्चैव संस्काराः षोड़श स्मृताः ॥ ३९ ॥
देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत् ।
पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दानं श्राद्धमुदाहृतम् ॥४०॥
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥४१॥

पद (मोक्ष) को पाता है, जिससे फिर पैदा नहीं होता ॥ ३५ ॥ जो अज्ञानी होता है, अपने मन को वश में नहीं रखता, और सदा अपवित्र रहता है वह उस पद (मोक्ष) को नहीं पाता और संसार में रह कर वारम्वार जन्म मरण पाता है ॥ ३६ ॥ स्नान आदि पवित्र वैदिक कर्मों से द्विजाति का इस लोकमें या परलोक में पवित्र शरीर संस्कार करना चाहिये ॥ ३७ ॥ गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमन अन्नप्राशन वपन कर्णवेद व्रतादेश वेदारम्भ केशान्त स्नान विवाह अग्नि परिग्रह ये षोडश प्रकारके संस्कार हैं॥३८-३९॥ पवित्र देशमें कालमें और पात्र में श्रद्धा से विधि पूर्व्वक जो दान पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को दिया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं ॥ ४० ॥ अन्न, जल, दूध, मूल, वा फल, से पितरों की प्रीति

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थप्रभवाः चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ४२ ॥
नोदितो गुरुणा नित्यं अप्रणोदित एव वा ।
कुर्य्यादध्ययनं यत्नमाचार्य्यस्य हितेषु च ॥ ४३ ॥
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुत ब्रह्मचर्य्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ ४४ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्य तथापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ ४५ ॥
वनेषु तु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत् ॥ ४६ ॥
सत्यं च समताचैव दमश्चैव न संशयः ।
अमात्सर्य्यं क्षमाचैव ह्रीस्तितिक्षाऽनुसूयता ॥ ४७ ॥

(तृप्ति) के लिये प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये ॥ ४१ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी, ये चारों आश्रम गृहस्थही से होते हैं ॥ ४२ ॥ गुरुजी कहैं या न कहैं किन्तु मनुष्य को उचित है कि गुरुजी को प्रसन्न करने के लिये प्रतिदिन परिश्रम से पढ़ै ॥ ४३ ॥ तीनों वेद (वा चारों वेद) वा दोनों वेद, वा एकही वेद अपने ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करते हुए पढ़कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये ॥ ४४ । गृहस्थ जब देखे "कि मैं बुड्ढा होगया मेरे बाल पक गये" और मेरे लड़के को भी लड़का होगया तब जङ्गल में चला जावे (अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम धारण करे)। ४५ । अपनी आयु (उम्र) के तीसरे हिस्से को वनमें बिताकर चौथे हिस्से (बुढ़ापे) में सन्यासी हो जाय ॥ ४६ ॥ १ सत्य, २ समता (सबको एक ही नजर से देखना) ३ दम (इन्द्रियों को वशमें रखना) ४ अमात्सर्य्य (अभिमान न करना) ५ क्षमा (दूसरे के अपराध को सहजाना) ६ लज्जा ७ तितिक्षा (चित्तमें शांति रखना)

त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं दया।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश ॥ ४८ ॥
यतः प्रभवति क्रोधः कामो वा भरतर्षभ।
शोक मोहौ विधित्सा च परासुत्वं स्व तद्वद ॥४९॥
लोभो मात्सर्य्यमीर्ष्या च कुत्साऽसूया कृपा भयम्।
त्रयोदशैतेऽतिबलाः शत्रवः प्राणिनां स्मृता ॥५०॥
देव द्विज गुरु प्राज्ञ दैवतातिथिपूजनम्।
ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च शारीर तप उच्यते ॥ ५१ ॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ ५२ ॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानस मुच्यते ॥ ५३ ॥

---

८ अनसूया (किसीसे डाह न करना,) ९ त्याग (दान करना अथवा बड़ी बड़ी चीजों को भी तुच्छ समझ कर छोड़ देना,) १० उदारता का ध्यान रखना (दूसरे का उपकार करने की इच्छा करना) ११ धीरता, १२ दया, १३ अहिंसा (किसी जीव को न मारना) ये तेरहों सत्य के स्वरूप हैं ॥४७ ४८ ॥ हे राजन्! १ क्रोध, २ काम, ३ शोक ४ मोह, ५ दूसरे की हंसी करने की इच्छा, ६ दूसरे की बुराई करनेकी चचलता, ७ लोभ ८ अभिमान, डाह १० निन्दा, ११ दूसरे की भलाई न सहना १२ निर्दयता, १३ भय, ये तेरह प्राणियों के बड़े प्रबल शत्रु हैं ॥४९-५०॥ देवता, ब्राह्मण, गुरु, पण्डित और अतिथियों की पूजा करना, ब्रह्मचर्य्य का पालना, और किसी जीव को न मारना, इनका नाम "शरीर तप" है ॥ ५१ ॥ जिसके सुनने से किसी प्रकार का कष्ट न हो ऐसे वचन का बोलना, सत्य प्रिय और हित-कारनवाली बात बोलना, तथा वेदपाठ करना, इनका नाम "वाक् तप' है ॥ ५२ ॥

आश्रमेषु चतुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमम् व्रतम् ।
तस्य लिङ्गानि वक्ष्यामि येषां समुदयो दमः ॥ ५४ ॥
क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।
इन्द्रियाभिजयो दाक्ष्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ ५५ ॥
अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः प्रियवादिता ।
अविहिंसानसूया चाप्येषां समुदयो दमः ॥ ५६ ॥
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ ५७ ॥
नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥ ५८ ॥
नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषं स्तम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥ ५९ ॥

मनको प्रसन्न रखना, शान्तिसे रहना, चुप रहना, चित्तको अपने वशमें रखना, और अपने विचारको पवित्र रखना, इनका नाम 'मानसतप' है ॥५३॥ चारों आश्रमोंके लिये अपने इन्द्रियोंको वशमें रखना ही उत्तम व्रत है, उनका लक्षण बताता हूं जिनका होना दम कहलाता है ॥ ५४ ॥ क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्य, नम्रता इन्द्रियोंको वशमें रखना, उदारता, कोमलता लज्जा, स्थिरता, कृपणता न करना क्रोध न करना, सन्तोष करना, प्रिय बोलना, हिंसा न करना, किसीकी निन्दा वा डाह न करना, इन सबका होना दम कहलाता है ॥५५-५६॥ जिस पुरुषके मन और वचन शुद्ध हैं और सदा सतर्क हैं वह वेदान्तसे प्राप्त होनेवाले सभी फल पाता है ॥ ५७ ॥ स्वयं पीड़ित भी होकर वचनसे दूसरेका दिल न दुखाओ, दूसरेसे द्रोह बुद्धि न रखो और जिससे सुननेवाला व्यथित हो ऐसा ईर्षा पूर्ण वचन मत बोलो ॥ ५८ ॥ ईश्वरमें अविश्वास, वेदकी निन्दा देवता-

सान्त्वमेकपदं शक्र पुरुषः सम्यगाचरन् ।
प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत् ॥ ६० ॥
यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते ।
तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः ॥ ६१ ॥
न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥ ६२ ॥
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत् सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ ६३ ॥
योऽन्तः सुखोऽन्तरारामः तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ ६४ ॥
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ६५ ॥

ओं का अनादर, दंभ, हठ, अहंकार, क्रोध, और कठोरता त्यागना ॥ ५९ ॥ बृहस्पति ने अपने शिष्य इन्द्र से कहा है कि हे शक्र ! शान्तमनसी एक ऐसा गुण है जिसका पूरा व्यवहार करने से मनुष्य सबके लिये नमूना बन जाता है और बड़ा यशस्वी होता है ॥ ६० ॥ जो पुरुष अपना उत्तेजित क्रोध रोक लेता है उसीको तत्त्वदर्शी विद्वान् लोग तेजस्वी कहते हैं ॥६१॥ प्रिय वस्तु पाकर प्रसन्न नहीं होना न कि अप्रियसे अप्रसन्न ब्रह्मज्ञानी स्थिर बुद्धिसे एकसा ब्रह्ममें स्थित रहता है ॥ ६२ ॥ जिसकी आत्मा बाहरी विषयों में लिप्त नहीं है वह आत्मा ही में सुख पाता है और योग द्वारा अपनी आत्मा को परमात्मा में मिलाकर अनन्त सुख का भागी होता है ॥ ६३ ॥ जो अपनेही में सुख आनन्द भोगता है और जिसका अन्तःकरण प्रकाशित है वह योगी ब्रह्म तथा होकर ब्रह्म निर्वाण पाता है ॥ ६४ ॥

अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य: ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रिय: ॥ ६६ ॥
आचार: परमो धर्म: श्रुत्युक्त: स्मार्त्त एव च ।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विज: ॥ ६७ ॥
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।
सर्वस्य तपसो मूलम् आचारं जगृहु: परम् ॥ ६८ ॥
प्रभवार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनं कृतम् ।
य: स्यात्प्रभवसंयुक्त: स धर्म इति निश्चय: ॥ ६९ ॥
धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृता: प्रजा: ।
य: स्याद्धारण संयुक्त: स धर्म इति निश्चय: ॥ ७० ॥
अहिंसार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनम् कृतम् ।
य: स्यादहिंसया युक्त: स धर्म इति निश्चय: ॥ ७१ ॥

इच्छा रहित, चित्तको आत्मासे रोककर, संगत्यागकर, केवल शरीरसे कर्म करता हुआ, मनुष्य कोई पाप नहीं करता है ॥ ६५ ॥ जो अपना कर्त्तव्य कर्म पूरा करता है और उससे फल की कुछ इच्छा नहीं रखता वही योगी तथा सन्यासी है किन्तु अग्नि और कर्मका छोड़नेवाला नहीं ॥ ६६ ॥ वेद और धर्मशास्त्र यही कहते हैं कि आचार बड़ा धर्म है, इसलिये आत्मज्ञानी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) सदा आचार में तत्पर रहें ॥ ६७ ॥ आचारही से धर्म पथ की उत्पत्ति जानकर मुनियों ने सब तपों की जड़ आचार का ग्रहण किया है ॥ ६८ ॥ सब प्राणियों के हित के लिये धर्म कहा गया। अतएव जो हित साधन करनेवाला है वही निश्चय करके धर्म है ॥ ६९ ॥ धारण करनेकी शक्ति होनेके कारण धर्म का ऐसा नाम है। यही प्रजाओं को नियम पूर्वक बांधे हुए है। यह निश्चय है कि धारण करनेवाला ही धर्म कहलाता है ॥ ७० ॥ प्राणियों की रक्षाके लिये धर्म कहा

न कुर्यात्कर्हिचित्संगं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥ ७२ ॥
तत्रापि मोक्षएवार्थं आत्यन्तिकतयेष्यते ।
त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्त भयसंयुतः ॥ ७३ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातः चेतना धृतिः ।
एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ७४ ॥
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ७५ ॥
रागद्वेष वियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ७६ ॥
सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः ।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः ॥ ७७ ॥

गया है इसलिये जो हिंसासे रहित है वही ठीक धर्म है ॥ ७१ ॥ इस अविद्यारूपी संसार से पार होनेकी इच्छा रखनेवालेको उचित है कि वह किसी वस्तुसे सङ्ग न करे क्योंकि सङ्गही धर्म अर्थ काम तथा मोक्षका नाश करनेवाला है ॥ ७२ ॥ इनमें भी मोक्ष ही परम उद्देश्य है शेष तीन तो कालके भयसे कातर रहते हैं ॥ ७३ ॥ इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, मिलित (शरीर) ज्ञान, बुद्धि, यही क्षेत्रकी तथा उसकी परिवर्त्तनकी क्षेत्र हैं ॥ ७४ ॥ इन्द्रियके विषयों में राग और द्वेष छिपा है इनमें से किसीके वशमें मन न हो यह बाधक हैं ॥ ७५ ॥ इन्द्रियोंके द्वारा विषयों में घूमता हुआ आत्मा सुख पाता है तब जब इन्द्रियां आत्माके आधीन और राग द्वेष रहित हों एवं आत्मा भी विशुद्ध हो ॥७६॥ सच बोलना, चोरी नहीं करना, क्रोधका त्याग, लज्जा, पवित्रता, बुद्धि, धैर्य, आत्मा दमन, इन्द्रियों को वशमें रखना,

सत्यं दमः तपः शौचम् सन्तोष क्षान्तिरार्जवम् ।
ज्ञानं शमो दया दानम् एष धर्मः सनातनः ॥ ७८ ॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥ ७९ ॥
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्य वेदश्चत्वार उद्धृताः ।
इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥ ८० ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ८१ ॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्ता श्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ ८२ ॥
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥८३

विद्या, यह धर्म है ॥ ७७ ॥ सत्य, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, शम, दया, दान, यह सनातन धर्म है ॥ ७८ ॥ वेद (जिसे श्रुति कहते हैं) और धर्मशास्त्र (जिसे स्मृति कहते हैं) से धर्म निकला है इसलिये इन्हीं दोनों का प्रमाण धर्म विचारमें मानना चाहिये ॥ ७९ ॥ ऋग्, यजुर, साम, अथर्व्व, यही चार वेद हैं इतिहास (वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत) और १८ पुराणका पाँचवाँ वेद नाम है ॥ ८० ॥ पुराण के पाँच चिन्ह हैं—सृष्टि, फिर सृष्टि, वंश, मन्वन्तर, इतिहास ॥ ८१ ॥ हे अर्जुन ! जैसे मूर्ख सकाम कार्य्य करते हैं उसी प्रकार ज्ञानी को उचित है कि निष्काम कार्य्य करे जिससे मनुष्यजातिका उपकार हो ॥ ८२ ॥ सब जीवोंके असीम आधार तथा कारण ब्रह्मचक्र में हंसरूपी यह जीव भ्रमाया जाता है जबतक वह अपने को और जगन्नियन्ता (परमात्मा) को फर्क समझता है । किन्तु उसमें मिल जानेपर अमर होकर आवागमन से रहित हो जाता

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ ८४ ॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ८५ ॥
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ८६ ॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ८७ ॥
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतं वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ८८ ॥
अभयं सत्त्वसंशुद्धि ज्ञानयोग व्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ ८९ ॥

है ॥ ८३ ॥ जिस पुरुषके कामना रहित कार्य्य होते हैं और जिसका कर्म्म ज्ञान रूपी अग्निमें भस्म गया है उसीको लोग पण्डित कहते हैं ॥८४॥ तुमको काम करने से मतलब है, फलसे नहीं, अपने कार्य्यका उद्देश्य फल मत बनाओ न कि काम से अलग हो जाओ ॥ ८५ ॥ मेरा अंश इस संसारमें अमर जीव होकर पांच इन्द्रियाँ और छठवां मन इनको प्रकृतिमें रहकर चलाता है ॥ ८६ ॥ वह जीव कान, आँख, स्पर्श इन्द्रिय, जिह्वा, नाक और मनके द्वारा विषयों को भोगता है ॥ ८७ ॥ आँखसे देखकर चलना, कपड़ेसे छानकर पानी पीना सत्य वचन बोलना, और विचारसे काम करना ॥ ८८ ॥ निर्भयता, चित्त प्रसन्नता, आत्मज्ञानके उपायमें निष्ठा, दान, इन्द्रिय संयम, यज्ञ, पढ़ना, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य अक्रोध, त्याग, शान्ति, खलता शून्यता, दया, लोभशून्यता, निरहङ्कारिता, लज्जा, चापल्यशून्यता,

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ ९० ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचं अद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीम् अभिजातस्य भारत ॥ ९१ ॥
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ९२ ॥
यत्तदग्रेविषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्विकम् प्रोक्तम् आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ९३ ॥
विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामेविषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ९४ ॥
यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ९५ ॥
आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥९६।

तेज, क्षमा, धैर्य, बाह्याभ्यन्तरशुद्धि, द्रोहशून्यता, अति अभिमान का अभाव यह छब्बीस गुण दैवी गुणोत्पन्न लोगोंमें होते हैं ॥ ८९-९१॥ धर्मध्वजित्व, धनादिका गर्व, अहङ्कार, क्रोध, रूखापन, मूर्खता, आसुरी गुणोत्पन्न के लक्षण हैं ॥ ९२ ॥ जो पहले विषसा मालूम होता है पर अन्तमें अमृत के तुल्य है ऐसी आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त सुखको सात्विक सुख कहते हैं ॥ ९३ ॥ विषय तथा इन्द्रिय के संयोग से जो पहले अमृतसा मालूम होता है किन्तु पीछे विषके समान दुःखदायी होता है उसे राजसो सुख कहते हैं ॥ ९४॥ निद्रा, आलस्य, तथा प्रमादसे उत्पन्न जो सुख पहले और पीछे भी मोह पैदा करता है उसे तामसी कहते हैं ॥ ९५ ॥ आयु,

कट्वम्ललवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिन: ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९७ ॥
पातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ९८ ॥
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ९९ ॥
अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥ १०० ॥
न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानाम् आशु पश्यन्विपर्ययम् ॥ १०१ ॥

सात्विक भाव, शक्ति, आरोग्य, सुख (चित्तप्रसाद) तथा रुचिवर्द्धक, रसयुक्त स्निग्ध युक्त, जिसका सारांश स्थायी रूपसे शरीरमें रहे और जो चित्तका परितोष करने वाला है उसी भोजनको सात्विक भोजन कहते हैं ॥ ९६ ॥ बहुत तीता और कड़ुआ, खट्टा, नमकीन, बहुत-गर्म, रूखा, और विदाही भोजन राजसिक कहलाता है जो दुःख, शोक तथा रोग पैदा करने वाला है ॥ ९७ ॥ ठंढा, नीरस, दुर्गन्ध, बासी, जूठा, अखाद्य (जिन वस्तुओंको खाना वो पीना न चाहिये) भोजन को तामसिक भोजन कहते हैं ॥ ९८ ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! इसमें सन्देह नहीं कि मन बहुत चञ्चल तथा वशमें होने के लायक नहीं है तथापि अभ्यास एवं वैराग्यसे वशमें किया जा सकता है ॥ ९९ ॥ जो धर्मविमुख है और जो झूठसे धन पैदा करता है और हिंसारत है उसे इस संसारमें सुख नहीं मिलता ॥ १०० ॥ धर्म करनेमें यदि अत्यन्त कष्ट भी उठाना पड़े तो धर्मको त्यागकर अधर्म में नहीं लगाना चाहिये क्योंकि पापी अधर्मीका नाश शीघ्र ही देखनेमें आता है

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १०२ ॥
सुलभाः पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥१०३॥
अभिवादयेद् वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १०४ ॥
न पाणिपाद चपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ।
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोह कर्मधीः ॥ १०५ ॥
ऋत्विक्पुरोहिताचार्य्यैं र्मातुलातिथि संश्रितैः ।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यै र्ज्ञातिसम्बन्ध बान्धवैः ॥ १०६ ॥
मातापितृभ्यां यामीभि र्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ १०७ ॥
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशेकाले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ १०८ ॥

॥ १०१ ॥ गौ की नाईं इस संसार में पापका फल तुरत नहीं मिलता धीरे धीरे पनप कर वह पाप पापीका जड़से नाश कर देता है ॥ १०२ ॥ सदा मीठा बोलनेवाले लोग बहुत हैं । कठोर किन्तु लाभ कारी वचन बोलनेवाले और सुनने वाले दोनों कम हैं ॥ १०३ ॥ वृद्धों को प्रणाम करना, अपने आसन पर बिठाना, अञ्जली बाँधकर उनके पास रहना, और जब चलें तो उनके पीछे चलना ॥१०४॥ हाथ, पाँव, आँख, चाल चलन, वचन, किसीसे चञ्चल न होना और किसी से द्रोह बुद्धि नहीं रखना ॥ १०५ ॥ ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य, मामा, अतिथि, अपने मातहत के लोग, लड़के, बुड्ढे, रोगी, वैद्य, अपनी जातिके लोग, रिश्तेदार, सम्बन्धी, माता, पिता, रिश्तादार स्त्री, भाई, भार्य्या, पुत्री, और नौकर, के साथ

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ १०९ ॥
अदेशकाले यद्दानम् अपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ११० ॥
चाक्रणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥१११॥
पूर्वे वयसि तत्कुर्य्यात् येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्य्यात् येनामुत्र सुखं वसेत् ॥११२॥
व्याधेरनिष्टसंस्पर्शात् श्रमादिष्टविवर्ज्जनात् ।
दुःखं चतुर्भिः शारीरं कारणैः संप्रवर्त्तते ॥११३॥
सदा तत्प्रतिकाराच्च सततञ्चाविचिन्तनात् ।
आधि व्याधि प्रशमनं क्रिया योगद्वयेन तु ॥११४॥

विवाद न करना ॥ १०६-७ ॥ जिस मनुष्यसे प्रत्युपकार की आशा नहीं उस पुरुष को यह समझकर दान देना कि "दान करना हमारा कर्त्तव्य है" और ठीक स्थान तथा समय पर, दान लेनेके योग्य पुरुष को देना सात्विक दान है ॥ १०८ ॥ प्रत्युपकार अथवा फलके लिये और बेमनका जो दान दिया जाता है उसे राजस दान कहते हैं ॥ १०९ ॥ तामसिक दान उसे कहते हैं जो अनुचित समय तथा स्थान पर अयोग्यको निरादर एवं अवज्ञासे दिया जाता है ॥ ११० ॥ गाड़ीमें चलने वाले, नब्बे बरस के बुड्ढे, रोगी, बोझा ढोनेवाले, स्त्री, स्नातक, राजा तथा दुलहा इनको राह देना चाहिये ॥ १११ ॥ जवानी में ऐसा काम करना जिससे बुढ़ापे में सुख हो और जीवन भर ऐसा काम करना जिससे परलोकमें सुख हो ॥ ११२ ॥ चार कारणों से शरीर के दुःख उत्पन्न होते हैं रोगसे, अहित के धारण से, हितके त्याग से, और श्रमसे ॥ ११३ ॥ शरीर का रोग (व्याधि) दवासे दूर होता है

मानसं शमयेत्तस्मात् ज्ञानेनाग्निमिवाम्बुना ।
प्रशान्ते मानसे ह्यस्य शारीरमुपशाम्यति ॥११५॥
यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवतु ।
काकोऽपि किं न कुरुते चञ्च्वा स्वोदरपूरणम् ॥११६॥
यस्य चात्मार्थमेवार्थः स च नार्थस्य कोविदः ।
रक्षेत भृतकोऽरण्ये यथा गास्तादृगेव सः ॥११७॥
स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्त्तिताः ।
वृक्षगुल्मलतावल्लीत्वक्सारास्तृणजातयः ॥११८॥
एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे ।
कीर्त्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम् ॥११९॥
पानीयं परमं दानं दानानां मनुरब्रवीत् ।
तस्मात् कूपांश्च वापीश्च तड़ागानि च खानयेत् ॥१२०॥

और आधि (मन का दुःख) की सदा चिन्ता त्याग रूप योगसे शान्ति होती है ॥११४॥ आग से जलकी नाईं मनके दुःखको ज्ञानसे शान्त करना क्योंकि मन का दुःख शान्त होने से शरीर का दुःख भी शान्त हो जाता है ॥ ११५ ॥ जिसके जीते रहने से बहुतों की रक्षा होती है उसी पुरुष को जीता समझना चाहिये । यों तो कौआ भी अपनी चोंचसे पेट भर लेता है ॥ ११६ ॥ जिसका धन अपने ही लिये है वह धनोपार्जन का मूल्य नहीं जानता क्योंकि ऐसा मनुष्य उस चरवाहा के सदृश है जो जङ्गल में गौ चराता है ॥११७॥ स्थावर प्राणी के छः भेद हैं—वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, बाँस, और तृण। इनके रोपने से मनुष्य इस संसार तथा स्वर्ग दोनों स्थानमें सुखी होता है ॥ ११८-९ ॥ मनुका वचन है, कि जलका देना सब दानों में श्रेष्ठ है अतएव कूआँ, वापी, तड़ाग आदिका खनवाना उचित

यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमी गृही ॥१२१॥
शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत ।
आचार्य्य शास्ता या जातिः सा सत्या सा जरामरा ॥१२२॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्य्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥१२३॥
एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं द्विषन्तोमन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥१२४॥
तस्य चापि भवेत् कार्य्यं विवृद्धौ रक्षणे तथा ।
भक्ष्यमाणो ह्यनादानात् क्षीयते हिमवानपि ॥१२५॥
क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययमानः स्ववाञ्छया ।
परिक्षीयत एवासौ धनो वैश्रवणोपमः ॥१२६॥

है ॥ १२० ॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, तथा सन्यासी यह तीनों प्रतिदिन विद्या एवं अन्न द्वारा गृहस्थसे ही जीवन धारण करते हैं इसलिये तीनों आश्रम से श्रेष्ठ गृहस्थ आश्रम है ॥ १२१ ॥ इस पञ्चतत्त्व निर्मित अधम शरीर को उत्पन्न करने वाले मा बाप हैं किन्तु गुरुके द्वारा जो वस्तु (विद्या) उत्पन्न होती है वह अजर एवं अमर है ॥ १२२ ॥ जैसे खोदने से पृथ्वी से जल निकलता है उसी प्रकार गुरु की सेवासे विद्या मिलती है ॥ १२३ ॥ जैसे किसी मैदान में अकेले खड़े वृक्षको हवा तोड़ गिराती है उसी प्रकार सब गुणोंसे सम्पन्न पुरुष भी यदि अकेला (बिना सङ्गी साथी के) हो तो दुष्ट शत्रु लोग उसे तङ्ग करते हैं ॥ १२४ ॥ धनकी रक्षा करना और उसको बढ़ाना जरूरी है क्योंकि सिर्फ खर्च ही हो आमद न होतो हिमवान पर्व्वत के तुल्य भी धन खर्च होजाय ॥ १२५ ॥ अपने आमद को न देख-भाल जो मनमाना खर्च करता है वह कुबेर के सदृश भी धनी होने पर दरिद्र हो

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः ।
ऐश्वर्य्यं प्रियसंवासो मुह्येत्तत्र न पण्डितः ॥१२७॥
अकर्म्मणां वै भूतानां वृत्तिस्यान्नहि काचन ।
तदेवाभिप्रपद्येत न विहन्यात् कदाचन ॥१२८॥
धर्म्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यं मूलकारणम् ।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥१२९॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्ज्जयेत् ॥१३०॥
यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितञ्च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥१३१॥
शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरजा गुणाः ।
तेषां गुणानां साम्यं यत् तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ॥१३२॥
तेषामन्यूनमोद्रेके विधानमुपदिश्यते ।
उष्णेन बाध्यते शीतं शीतेनोष्णं प्रबाध्यते ॥१३३॥

जाता है ॥ १२६ ॥ जवानी, सुन्दर रूप, जीवन, धन बटोरना, ऐश्वर्य्य, मित्रों से वार्त्तालाप आदि सब नाश वान हैं इसपर पण्डित लोग कुछ मोह नहीं करते ॥१२७॥ बिना काम किये कोई जीविका निर्व्वाह नहीं कर सकता अतएव सबको किसी न किसी वृत्तिमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ १२८ ॥ अर्थ, धर्म्म, काम, मोक्ष, इनके पानेके लिये सब से जरूरी शरीर की आरोग्यता ही है बिमारी से वही आरोग्यता नष्ट हो जाती है ॥ १२९ ॥ बहुत भोजन से मनुष्य रोगी हो जाता है, आयु कम होजाती है बहुत खाना अधर्म्म है इसलिये छोड़ देना ॥ १३० ॥ जो पदार्थ खाने योग्य हो और जो खाने पर पच जाय और पचकर जो शरीर को फायदा करे उसी पदार्थ को खाना ॥ १३१ ॥ नीरोग पुरुष वही है जिसके शरीर में वात, पित्त, कफ

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित् ॥१३४॥
बलशौर्य्यादभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना।
लङ्घनीयः समस्तस्य बलशौर्य्यविवर्ज्जितः ॥१३५॥
परवीर्य्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।
अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥१३६॥
स्ववीर्य्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान्।
अभीतो युध्यते शत्रून् स वै पुरुष उच्यते ॥ १३७ ॥
पूर्वोपकारी यस्ते स्याद् अपराधे गरीयसि।
उपकारेण तत्तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः ॥ १३८ ॥
आरभेतैव कर्म्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्म्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ १३९ ॥

तीनों बराबर रहें क्योंकि यही तीनों शरीर के गुण हैं ॥ १३१ ॥ जब इनमें कोई एक अधिक बढ़ जाता है तो गर्मसे कफ की और ठण्डे से पित्तकी शान्ति करना ॥ १३२ ॥ सदा कार्य्यमें तत्पर रहना, कभी शिर नीचा न करना, काम करनेही को पौरुष कहते हैं, अपर्व स्थान में भग्न भी होकर कभी नत न हो ॥ १३४ ॥ हृदय में कुछ उत्साह न होनेहीसे बल तथा वीरता का अभाव होता है और इनके न होनेसे मनुष्य घृणित समझा जाता है ॥ १३५ ॥ खुद अशक्त होकर जो दूसरे के भरोसे दुश्मन का सामना करता है वह नपुंसक कहलाता है ॥१३६॥ पुरुष वही है जो अपने ही बलसे शत्रुओं को जीतने के लिये कटिबद्ध होकर निर्भयता से उनका मुकाबिला करता है ॥ १३७ ॥ जिस मनुष्यसे तुम्हारा कुछ उपकार हुआ हो उससे यदि कोई बड़ा भारी अपराध हो जाय तो पहले किये हुए उसके उपकार के बदले में उस भारी से भारी अपराध को भी क्षमाकर

यथाशक्ति विकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते ।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डित बुद्धयः ॥ १४० ॥
उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥ १४१ ॥
सुखं दुःखान्तमालस्यं दुःखं दाक्ष्यं सुखोदयम् ।
भूतिस्त्वेयं श्रिया सार्द्धं दक्षेव सतिनालसे ॥ १४२ ॥
श्वःकार्य्यमद्यकुर्व्वीत पूर्व्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥ १४३ ॥
निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्म्मणः ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥ १४४ ॥

देना उचित है ॥ १३८ ॥ काम करने पर यदि थकाहट भी हो तो काम को शुरू करना चाहिये जो मनुष्य सदा नया नया काम आरम्भ किया करता है उसके निकट लक्ष्मी सदा वर्त्तमान रहती है ॥ १३९ ॥ उन्हीं को बुद्धिमान कहा जाता है जो अपने बलके मुताबिक काम करना चाहते हैं और उसके लिये पूरी चेष्टा भी करते हैं एवं कुछ अवमानना नहीं करते ॥ १४० ॥ यदि मनुष्य सदा निश्चित भावसे कामके साधन में उठने बैठने सोते जागते प्रवृत्त रहे तो अवश्य काम सफल हो ॥ १४१ ॥ दुःख के नाशसे सुख होता है, आलस्य से दुःख होता है, बुद्धिमानही पुरुष के साथ विद्या एव धन रहते हैं आलसी के साथ नहीं ॥ १४२ ॥ कलका काम आज करो और तीसरे पहर, का काम अभी कर डालो कारण यह कि मृत्यु यह कभी नहीं देखती कि अमुक काम हुआ या नहीं ॥ १४३ ॥ उसी पुरुष को लोग बुद्धिमान कहते हैं जो काम का निर्णय करके उसमें तुरत लग जाता है और कामके समाप्त न होने तक छोड़ता नहीं और जो एक क्षण भी

आलस्यं मदमोहौ च चापल्यं गोष्ठिरेवच ।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा त्यागित्वमेवच ॥
एते वै स प्रदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनाम्मताः ॥ १४५ ॥
देशकालौ तु सम्प्रेक्ष्य बलाबलमथात्मनः ।
नादेशकाले किञ्चित्स्यात् देशकालेप्रतीक्षताम् ॥ १४६ ॥
युक्तिशास्त्रञ्च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रञ्च भारत ।
गन्धर्व्वशास्त्रञ्च कलाः परिज्ञेया नराधिप ॥ १४७ ॥
पुराणमिति हासाश्च तथाख्यानानि यानि च ।
महात्मनाञ्च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेवच ॥ १४८ ॥
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्म्मणि ।
अप्रिये चैव कर्त्तव्ये चिरकारीप्रशस्यते ॥ १४९ ॥
मन्त्रयेत्सह विद्वभिः शक्तैः कर्म्माणिकारयेत् ।
स्निग्धैश्च नीतिविन्यासान् मूर्खान् सर्वत्र वर्जयेत् ॥१५०॥

व्यर्थ नष्ट नहीं करता ॥ १४४ ॥ आलस्य, मद, मोह, चञ्चलता, दम्भ सिखना, स्तब्धता, अहंकार, लालच यह छात्रके दोष हैं ॥ १४५ ॥ समय, स्थान और अपनी शक्ति इन तीनों का विचारकरके तो कोई काम करना चाहिये क्यों कि कार्य्य सफलता के यही प्रधान अङ्ग हैं ॥ १४६ ॥ तर्क शास्त्र (न्याय) शब्द शास्त्र (व्याकरण) गन्धर्व्व शास्त्र (सङ्गीत) और ६४ कला आदि मनुष्य को सीखना उचित है ॥ १४७ ॥ १८ पुराण, महाभारत तथा वाल्मीकीय रामायण आदि बहुत तरह की कथायें एवं बड़े लोगों की, जीवनी पढना और सुनना चाहिये ॥ १४८ ॥ क्रोध, अभिमान, घमण्ड, द्रोह, पाप, अप्रिय, इन कामों में देर करने से फायदा है ॥१४९॥ विद्वानके साथ सलाह करना, योग्यता नुसार मनुष्य से काम लेना,

यस्य यस्य हि यो भावस्तेन तेनहि तं नरम् ।
अनुप्रविश्य मेधावी चिप्रमात्मवशं नयेत् ॥ १५१ ॥
एतावज्जन्मसाफल्यं यदनायत्तहत्तिता ।
ये परधीनतां यातास्ते वै जीवन्ति के मृताः ॥ १५२ ॥
अर्जितं स्वेनवीर्य्येण नाप्यपाश्रित्य कञ्चन ।
फलं शाकमपिश्रेयो भोक्तुं ह्यकृपणं गृहे ॥ १५३ ॥
परस्य तु गृहे भोक्तुः परिभूतस्य नित्यशः ।
सुमृष्टमपि न श्रेयो विकल्पोऽयमतः सताम् ॥ १५४ ॥
रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ १५५ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १५६ ॥

राजनीति सम्बन्धी कामोंमें अपने मित्रोंको लगाना, और मूर्खोंसे दूर रहना अच्छा है ॥ १५० ॥ विद्वान को उचित है कि जिस पुरुष का जैसा स्वभाव हो वैसेही स्वभावसे उसके भीतर घुसकर उसको अपने वशमें करे ॥ १५१ ॥ मनुष्य जन्मका फल यह है कि स्वतन्त्रतासे जीवन व्यतीत करना पराधीन होकर रहना तो मुर्दों के समान है ॥ १५२ ॥ महात्माओंका यह उपदेश है कि अपने पुरुषार्थद्वारा कमाकर साग सत्तू जो मिले उसीको अपने घरमें स्वतन्त्रता से खाना अच्छा है किन्तु प्रति दिन बातें सुनकर दूसरे के घरमें मालपूआ खाना भी हेय है ॥ १५३-४ ॥ रोगी, बहुत दिनतक परदेश रहनेवाला, दूसरें का अन्न खानेवाला, दूसरे के स्थान पर सोनेवाला, ऐसे पुरुष का जीना मरनेके बराबर है और मरजाना तो मानों विश्राम पाना है ॥ १५५ ॥ सुख और दुःखका मुख्यतःयही भेद जानना कि

यतते चापवादाय यत्नमारभते त्वये ।
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति ॥ १५७ ॥
तादृशैः सङ्गतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद् विवर्जयेत् ॥ १५८ ॥
वस्त्रमापस्तिलान् भूमिं गन्धो वासयते यथा ।
पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणाः ॥ १५९ ॥
हास्यवस्तुषु चाप्यस्य वर्त्तमानेषु केषुचित् ।
नातिगाढं प्रहृष्येत न चाप्युन्मत्तवद्धसेत् ॥ १६० ॥
आपद्युन्मार्गगमने कार्यकालात्ययेषु च ।
कल्याणवचनं ब्रूयाद् अपृष्टोऽपि हितं नरः ॥ १६१ ॥
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।

पराधीनता दुःख और स्वतन्त्रता सुख है ॥ १५६ ॥ किसी मनुष्य से थोड़ा कष्ट आनेपर नीच पुरुष उसकी निन्दा करता फिरता है और उसका अनिष्ट करनेका उपाय करता है । यदि उससे थोड़ा सा भी उसका अनिष्ट हो जाय तो बहुत ही बिगड़ जाता है । विद्वान को उचित है कि वह सावधानी पूर्वक ऐसे नीच निठुर अधीर मूर्ख से दूर रहे ॥ १५७ ८ ॥ कपड़ा, पानी, तिल, पृथ्वी, आदि फूलों के सङ्ग से सुगन्धित होते हैं । मनुष्य भी उसी प्रकार अच्छे लोगों के साथसे गुणवान होता है ॥ १५९ ॥ हँसीकी कोई बात आजाय तो उसपर बहुत न हँसना या उन्मत्तकी नाईं हँसते हँसते विक्षिप्तसा न होना । किन्तु बहुत गम्भीर बनके भी न बैठे मस्ती छोड़कर थोड़ा थोड़ा हँसे ॥ १६० ॥ आपत्ति के समय सुपथ छोड़ यदि अपना मित्र कुपथ पर जाता हो और पूछनेका समय भी न हो तो भी उसके हितकी बात कह देना चाहिये ॥ १६१ ॥ प्रायः तीन घड़ी रात रहते निद्रा त्याग कर उठे और अर्थ तथा धर्मका विचार कर तदनन्तर आसन करके शौच मन्द करके

उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः ।
एवमेवापरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः ॥ १६२ ॥
अनायुष्यं दिवास्वप्नं तथाभ्युदितशायिता ।
प्रगेनिशमथाशु तथा ये चोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै ॥ १६३ ॥
दुर्लभा पैतृकोभूमिः पितुर्मातुर्गरीयसी ।
तत्शस्यं च पवित्रं च देवेकार्येऽपि पैतृके ॥ १६४ ॥
म्रियते पैतृकीभूम्यां तीर्थतुल्यफलं लभेत् ।
गङ्गाजलसमं पूतं पितृखातोदकं हरे ॥ १६५ ॥
तत्र स्नात्वा जलेपूते गङ्गास्नानफलं लभेत् ।
पितॄणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम् ॥ १६६ ॥
पैतृकी जन्मभूमिश्चेत् फलं तद्विगुणं लभेत् ।
पैतृकीभूमि तुल्या च दानभूमिः सतामपि ॥ १६७ ॥

अञ्जली बांधकर प्रातःकाल की सन्ध्या करे और उसी प्रकार सायंकाल की भी सन्ध्या करे ॥ १६२ ॥ दिनका सोना और सूर्योदयके बाद सोना मनुष्य के आयुर्बल का नाश करता है। इसलिये सुबह का सोना, रातको सबेरहो सो जाना और अशुद्ध होकर सोना यह सब बुरा है ॥ १६३ ॥ ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्डके १०३ अध्यायमें राजा उग्रसेन जन्म भूमिका माहात्म्य श्रीकृष्णचन्द्र से कहते हैं कि हे हरि। मातृभूमि दुर्लभ है, माता पिताके लिये भी श्रेष्ठ है वहांका अन्न शाक आदि सब कामके लिये पवित्र है, वहां मरनेसे तीर्थके समान फल मिलता है वहांका जल गङ्गाजल के समान पवित्र है जिसमें स्नान करने से गङ्गा स्नान का पुण्य मिलता है वहां पर श्राद्ध पूजा करना दूसर स्थानमें करने से द्विगुण फल देता है क्योंकि धार्मिकों (महात्माओं) से

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥ १६८ ॥
रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्ता विद्धं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ १६९ ॥
स्वीयं यशः पौरुषञ्च गुह्ये कथितञ्च यत् ।
कृतं यदुपकाराय धर्मज्ञो न प्रकाशयेत् ॥ १७० ॥
यस्तु शत्रोर्वशस्थस्य शक्तोऽपि कुरुते दयाम् ।
हस्तप्राप्तस्य वीरस्य तञ्चैव पुरुषं विदुः ॥ १७१ ॥
आगतस्य गृहं त्यागस्तथैव शरणार्थिनः ।
याचमानस्य च वधो नृशंसो गर्हितो बुधैः ॥ १७२ ॥
भक्तञ्च भजमानञ्च तवास्मीति च वादिनम् ।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न संत्यजेत् ॥ १७३ ॥

लिये जन्म भूमिके तुल्य दानभूमि दूसरी नहीं है ॥ १६४-७ ॥ जो मनुष्य पराया धन, रूप, बल, वंश, सुख, सौभाग्य और सम्मान देखकर द्वेष करता है उसकी व्याधिका अन्त नहीं ॥ १६८ ॥ बाणसे छेदा और कुठारसे काटा बन फिर पनप जाता है परन्तु कड़ुई जबानकी तेज कटारी से दिलपर की हुई चोट नहीं मिटती ॥ १६९ ॥ धर्म जाननेवाले अपनी कीर्त्ति, पौरुष, दूसरे की कही हुई गुप्त बात, और किया हुआ परोपकार प्रगट नहीं करते ॥ १७० ॥ पुरुष वही है जो दया करके अपने वशमें आए हुए शत्रुको पीड़ा न दे यद्यपि उसे ऐसा करनेकी पूरी शक्ति भी है ॥ १७१ ॥ घर आए हुए तथा शरणागत का त्याग करना, और प्राण भिक्षा मांगनेवालेको मारना निष्ठुर का काम है। इसकी बड़ी निन्दा पण्डित लोग करते हैं ॥ १७२ ॥ भक्त, सेवक, "मैं आपही का हूं" ऐसा माननेवाला, इन

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् ।
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ १७४ ॥
आर्य्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् ।
सन्तः परार्थं कुर्व्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् ॥ १७५ ॥
सुखं ह्यवमतः शेते सुखञ्च प्रतिबुध्यते ।
सुखञ्चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १७६ ॥
क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येद् आक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतां वदेत् ॥ १७७ ॥
आरोप्यते शिला शैले यत्नेन महता यथा ।
निपात्यते क्षणेनाधस्तथात्मा गुण दोषयोः ॥ १७८ ॥
आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत् क्षणभङ्गुराः ।
परित्यागाश्च निःसङ्गा भवन्ति हि महात्मनाम् ॥ १७९ ॥

लोगोंको महाविपद में भी त्यागना उचित नहीं ॥ १७३ ॥ कृतघ्नको यश, स्थान, और सुख नहीं है उससे सब घृणा करते हैं और उसका मोक्ष नहीं होता ॥१७४॥ महात्मा लोग तो किसीसे प्रत्युपकार की आशासे उपकार नहीं करते बल्कि यह समझकर उपकार करते हैं कि ऐसा करना मेरा कर्त्तव्य है ॥ १७५ ॥ जिसकी बेइज्जती कोई दुष्ट करता है वह तो सुख स्वच्छन्दतासे सोता जागता और विच-रता है किन्तु उस दुष्टका नाश हो जाता है ॥ १७६ ॥ क्रोधीपर क्रोध न करना, गाली बकने वालेसे नम्र रहो, और नाक, कान आंख जीभ इन सबसे मिथ्या त्यागो ॥ १७७ ॥ नीच होना आसान, पर ऊंच होना कठिन है। किसी चट्टानको पर्व्वत पर चढ़ाना अत्यन्त कठिन है किन्तु नीचे गिरा देना तो मानो खेल है ॥ १७८ ॥ बड़ोंकी दोस्ती मरने तक बनी रहती है, गुस्सा तो तुरतही ठण्ढा हो जाता है और

शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥१८० ॥
न बिभेति रणात् यो वै संग्रामेऽपराङ्मुखः ।
धर्मयुद्धे मृतोवापि तेन लोकत्रयं जितम् ॥ १८१ ॥
यत्राबलोवध्यमानः त्रातारं नाधिगच्छति ।
महान् दैवकृतस्तत्र दण्डः पतति दारुणः ॥ १८२ ॥
यः कुलाभिजना चारैरति शुद्धः प्रतापवान् ।
धार्मिको नीतिकुशलः स स्वामी युज्यते भुवि ॥१८३॥
औद्धत्यं परिहासञ्च तर्ज्जनं बहुभाषणम् ।
पितोरग्रे न कुर्व्वीत यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ १८४ ॥
गुरुणा चैवनिर्बन्धो न कर्त्तव्यः कदाचन ।
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ॥ १८५ ॥
प्रसाधनञ्च केशानाम् अञ्जनम् दन्तधावनम् ।
पूर्वाह्न एवकार्याणि देवतानाञ्च पूजनम् ॥ १८६ ॥

उनका दान निःस्वार्थ होता है ॥ १७९ ॥ इस शरीरसे और गुणसे बहुत अन्तर है शरीर तो नाशवान है और गुण अविनाशी है ॥ १८० ॥ जो संग्रामसे डरकर युद्धक्षेत्रसे भागता नहीं प्रत्युत धर्मयुद्धमें लड़कर प्राण तक दे देता है वही तीनों लोककी जय पाता है ॥ १८१ ॥ जहाँ दुर्बल सताए जाते हैं और उनका कोई त्राण नहीं करता उस स्थान पर जगदीश्वरका कठिन दण्ड गिरता है ॥ १८२ ॥ उच्च कुल अच्छे आचरणके परिवार युक्त शुद्ध प्रतापी धर्मात्मा नीतिज्ञ पुरुष ही शासक होनेके योग्य है ॥ १८३ ॥ पिताके सामने उद्धतता, हँसी ठट्ठा और गरजना फजूल बात करना न चाहिये । इसीमें अपना 'हित' है ॥ १८४ ॥ गुरुसे लड़ना नहीं और यदि वह क्रोध करें तो बड़ी नम्रतासे उन्हें प्रसन्न करना चाहिये ॥ १८५ ॥ केश

नैवावस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति ।
स्नातव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत्
भूमौ सदैव नाश्नीयान्नानासीनो न शब्दवत् ॥ १८७ ॥
उपानहौ च वस्त्रञ्च धृतमन्यै र्न धारयेत् ।
ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात् पादम्पादेन नाक्रमेत् ।
अन्यस्य चाप्यवस्नातं दूरतः परिवर्ज्जयेत् ॥ १८८ ॥
दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टोत्सर्जनञ्चैव दूरं कार्य्यं हितैषिणा ॥ १८९ ॥
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ १९० ॥
मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन ।
केशकीटावपन्नञ्च पदास्पृष्टञ्च कामतः ॥ १९१ ॥

झाड़ना, दान्त साफ करना, और देवता की पूजा दोपहरके पहले ही करना ॥१८६॥ एक कपड़ा पहन कर भोजन और स्नान न करना खानेकी चीज जमीन पर रख या खड़ा होकर भोजन न करना और खाते समय बोलना नहीं ॥ १८७ ॥ दूसरेका धारण किया हुआ कपड़ा या जूता न पहनना, ब्रह्मचर्य्यसे रहना, पांव पर पांव न रखना, दूसरे के स्नान किये हुये जलसे स्नान नहीं करना ॥ १८८ ॥ जहां रहे वहांसे दूर मल मूत्र त्यागे, पांव धोये, और उच्छिष्ट फेंके ॥ १८९ ॥ जलमें मलमूत्र का त्याग वा थूक फेंकना, विष्टा या रक्त लगा हुआ वस्त्र धोना, या खून वा और कोई विषैली चीज फेंकना मना है ॥ १९० ॥ पागल, क्रोधी, रोगी का अन्न, केश या मरा कीड़ा पड़ा हुआ अन्न, पांवसे छूआ हुआ अन्न कभी न खाना ॥१९१॥ किसी को जूठा अन्न न देना नियमित समय के अतिरिक्त दूसरे समय

नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्य्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत् ॥१८२॥
निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ १८३ ॥

में न खाना और अधिक आहार न करना और जूठा मुंह बाहर न जाना ॥ १८२ ॥
नीतिकार चाहे प्रशंसा करें वा निन्दा, धन आवे वा चला जाय, आजही मरना हो वा कल्पान्तमें, जो हो, किन्तु धीर पुरुष न्याय पथसे एक बाल भी इधर उधर नहीं हटते ॥ १८३ ॥

The following pages contain the opinions of the press and the eminent educationists of the country on the little book, "Rijustav: manjusha," compiled for the religious and moral instructions of the Hindu boys. Without a reverential faith in the existence, in the justice, in the mercy and in the omnipotence of the Supreme Being, the Author of the universe and all it contains, morality is but a mockery, peaceful and harmonious domestic life an impossibility. Moreover, obedience to the laws of God out of a deep faith in their infallibility as well as out of love and veneration for God Himself is an essential part of man's early education which makes him a dutiful son, a

kind husband, a loving father, a true patriot and a loyal citizen of the empire he lives in, and a lawful sharer of eternal bliss after death. History abounds in examples of this, and the greatest authors of all nations and of all ages hold this view. That the result in our own country of the want of any religious education has been only the reverse of desirable is admitted even by our benign rulers, as the following extracts will show.

"The difficulties, attending the adoption by the Government of India of an authorized manual containing lessons on moral subjects which shall not offend the feelings of the numerous races and creeds of the peoples of India, are no doubt considerable; but I am of opinion that it is the duty of the Government to face this problem and not to be content until a serious endeavour has been made to supply what cannot fail to be regarded as a grave defect in the educational system of India." *Extract from letter No. 120 dated the 29th September, 1887, from the Secretary of State to the Governor General in Council.*

"It has been already clearly stated that the Governor General in Council entirely approves of the views of the Education Commission on this point, and would gladly see an increase in the number of aided Colleges and Schools

in which religious instructions may be freely given." *Extract from letter No. 387 Dated the 31st December 1887 from the Government of India in The Home Department.*

The compilation of the book is only the beginning of an attempt, though a meagre one, at removing this want to some extent.

On being published, the book was first sent to :—

1. His Excellency the Viceroy and Governor General of India.

2. His Excellency the Commander-in-chief of the Indian Forces.

3. His Excellency the Governor of Bombay.

4. His Excellency the Governor of Madras.

5. His Honour the Lieutenant Governor of Bengal.

6. His Honour the Lieutenant Governor of Burma.

7. His Honour the Lieutenant Governor of the Panjab

8. His Honour the Lieutenant Governor of the United Provinces of Agra and Oudh.

9. The Chief Commissioner of Assam.

10. The Chief Commissioner of The Central Provinces, Nagpur.

11. The Chief Commissioner of The North West Frontier Province, Peshawar.

12 The Chief Commissioner of The British Beluchistan, Quetta

13. The Chief Commissioner of The Andamans and the Nicobar Islands, Government Circuit House at Ross Island

14 The Chief Commissioner of Ajmere and Merwara, Abu

15. The Chief Commissioner of Coorg, Bangalore

16. The Chief Commissioner of Berar, Chudderghat Sekunderabad

17. The Governor General's Agent for the Central India Agency, Indore

The book was also sent to all the Directors of Public Instruction and to some of the Inspectors, Assistant Inspectors and Deputy Inspectors of Schools, of the Government.

62, Cotton Street,
CALCUTTA,
June 28, 1905

BANKEY LALL,
Proprietor,
B. L. PRESS

H. E. THE VICEROY and GOVERNOR GENERAL'S PRIVATE SECRETARY WROTE AS FOLLOWS :—

PRIVATE SECRETARY'S OFFICE,
GOVERNMENT HOUSE,
Calcutta, 8th March, 1905

Sir,

I am desired to acknowledge the receipt of your letter of the 21st Ultimo, and to thank you for the book which you have been so good as to send for the acceptance of His Excellency the Viceroy.

Yours faithfully,
(Sd). R. NATHAN,
Private Secretary to the Viceroy.

Similar letters have been received from almost all the Heads of the Provincial Governments.

No. 635.

From

THE SECRETARY,
PUNJAB TEXT-BOOK COMMITTEE, LAHORE.
1st June 1905.

Sir,

The Punjab Text-Book Committee have decided to present copies of "Rijustavamanjusha" to Schools.

(Sd). K. B. SHOPAR.

The Directors of Public Instruction, Bengal, The Central Provinces, the United Provinces, and Assam through their letters No. 5207 of the 4th April, 3368 of the 10th April, G 136 of the 11th April, and 5350 of 13th June respectively, have communicated that the book will be examined by the Text-Book Committees.

3rd March, 1905.

THE HON. MAHARAJA SIR RAMESHWAR SINHA BAHADUR K. C. I. E OF DARBHANGA'S PRIVATE SECRETARY WRITES :—

H. H. the Maharaja Saheb of Darbhangah has read the book you sent with great interest, and thinks that such books will be most useful in the way of imparting much needed religious instruction to the young. The get up of the book is excellent.

(Sd). TULAPATI SINGHA

10th March 1905

W. WADDINGTON ESQ. M. A., C. I. E., &C. PRINCIPAL, MAYO COLLEGE, AJMER, WRITES :—

"Rijustavamanjusha," seems to be very suitable for students. I am about to convene a Committee of Pandits to select religious text books for the boys in this College, and I shall lay your book before them for opinion.

(Sd). W. WADDINGTON.

15th March 1905.

THE HON. BABU SALIGRAM SINHA, B.A., B.L. FELLOW OF THE CALCUTTA UNIVERSITY, MEMBER OF THE SYNDICATE AND HEAD EXAMINER IN HINDI, VAKIL OF THE HIGH COURT, CALCUTTA, WRITES :—

I read portions of your book, and I think it will be of great use to the Hindu community and particularly to

students. It ought to be in the hands of every Hindu student studying Sanskrit in our Schools and Colleges.

(Sd). SALIGRAM SINGHA.

15th March 1905.

THE HEAD MASTER, JAGANNATH 1ST GRADE SCHOOL, MANDALA, C. P. WRITES :—

It is beyond praise for the religious instructions of the Hindu boys and even for those of advanced age who had never been accustomed to observe the functions of duties earnestly performed by our forefathers for the attainment of spiritual knowledge and for the prosperity of invaluable physical strength which result in practising the daily duties given in the book. For the wide and urgent spread of the book I held a meeting of the Hindu gentlemen and explained the merits of the system prescribed therein for the well-being of every Hindu child. The book was greatly and highly appreciated and I am desired to express my as well as their thanks due to you for the pains you took for bettering the conditions of the Hindus at present. This kind of book was wanting and you made up the deficiency, and care will be taken to introduce it among the Hindu boys.

(Sd). RAM CHANDRA DUBE.

15th March 1905.

THE HON. MAHARAJA SIR PRATAP NARAYAN SINHA BAHADUR K. C. I. E. OF AYODHYA WRITES :—

I am in receipt of a copy of "Rijustavam njusha" as kindly sent by you. As I have but very little time at my disposal I have not been able to go through it. I shall however try to peruse the book through and shall after that be glad to express my opinion as to its usefulness

(Sd). PRATAP.

16th March 1905.

PANDIT BALDEVA MISHRA, B. A. ASST. INSPECTOR OF SCHOOLS, CHOTA NAGPUR DIVISION WRITES :—

I have gone through the book with much interest and have found it so very useful to the young boys that I should like to see a copy of the publication in the hands of every Hindu student.

(Sd). BALDEVA MISHRA.

16th March 1905.

BABU HARI PRASANNA MUKERJEE, M.A., B.L., LATE PRINCIPAL, T. N. JUBILEE COLLEGE, BHAGULPUR WRITES :—

The compilation seems to be a nice one and the translations beautiful. May I request you to consider whether in persuing your work you cannot, in one of the parts to be issued, insert सन्ध्योपासन (accompanied with annotations

and a translation of the kind given in Part I.) and नित्यपूजाविधि ? A publication of the kind with a moderate price, I think, will greatly serve the object you have in view.

(Sd). HARIPRASANNA MUKERJEE.

16th March 1905.

PANDIT JAYA NARAYAN VAJPAI, MEMBER TEXT-BOOK COMMITTEE OF BEHAR, WRITES :—

In fact you have been able by the grace of God to collect fit materials for making it so beautiful a Paddhati for the Nitya Karma of every Hindu student and that in a nutshell.

I hope you will not take it amiss if I, instead of extolling it to the skies which it so richly deserves, point out to you certain unavoidable defects which should be remedied in its second edition. Words like—Asana—Yana-Dvaidhiashraya—Parshingraha—conveying deep double meaning should be explained in more comprehensive Hindi terms. I have been able to see your book only at random opening. Excuse my boldness of writing to you in such a familiar style.

Your book is a choice piece of beauty in all what our religious books contain. It should recommend itself to all who care to know anything about them with a true heart.

May your noble efforts succeed is the devout prayer of your most sincere well-wisher.

(Sd). JAY NARAYAN VAJAPEYI.

22nd March, 1905.

MR. J. H. SMITH, PRINCIPAL DALY COLLEGE (RAJKUMAR COLLEGE FOR THE CHIEFS OF THE CENTRAL INDIA AGENCY) INDORE, WRITES :—

The Shastri in charge of the religious education of the Kumars here recommends your book as one well-fitted for the Kumars to study. He notices however the omission of the sacredness of the cow ; and thinks this should be insisted on.

(Sd). *J.* H. SMITH.

24th March 1905.

BABU HARDHYAN SINHA, A ZAMINDAR OF THE ARRAH DISTRICT AND A WELLKNOWN PLEADER, AND VICE-CHAIRMAN OF THE MUNICIPALITY, OF BUXAR, WRITES :—

The selection is very good. I am sure that it would be useful to those for whom it is intended. I have no hesitation in saying that you have bestowed most conscientious care upon the work with a view to the religious and moral advancement of the young men of our country. I cannot refrain from adding that the get up of the book is also very commendable. I wish you success.

(Sd). HARDHYAN SINHA.

25th March 1905.

PANDIT KALI DATT DUBE, M. A., ASST. INSPECTOR OF SCHOOLS, BENARES DIVISION, WRITES :—

Your "Rijustavamanjusha" is admirably suited to Hindu youths and I trust it will be hailed with delight.

(Sd). K. D. DUBE.

27th March 1905.

H. H. THE MAHARAJA BAHADUR GAEKWAR OF BARODA'S PRIVATE SECRETARY WRITES :-

I am desired to inform you that the book has been referred to the Minister of Education of the Baroda State who is the proper authority in this matter, and he will do the needful as it may deserve.

(Sd). KANAIYALAL DEE.

28th March 1905.

PANDIT K. GOVIND SHASTRI, ADHYAKSHA, SADVIDYASHALA, MYSORE, WRITES :—

The book seems excellent in every way. I like your arrangement and the passages are admirably simple and clear. But in my opinion *its chief merit consists in the fact that it is so well adapted to the school use.*

(Sd). K. GOVINDA SASTRI.

19th April 1905.

PANDIT BALDEVARAM JHA, B. A., ASST. INSPECTOR OF SCHOOLS, BHAGALPUR DIVISION, WRITES :—

It will supply a long felt want and will prove useful to those for whom it has been intended. I hope the series will be completed in the near future.

(Sd). BALDEVA RAMA JHA.

20th April 1905.

THE DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION, PATIALA STATE, WRITES :—

I have the honour to inform you that your book "Rijustavamanjusha" has been forwarded to the subordinate officers for expression of opinions which will be duly communicated to you as desired.

(Sd). POORNA CHAND SINHA.

4th May 1905.

B. K. K. LELE, LATE SUPERINTENDENT OF EDUCATION, DHAR, C. I., WRITES :—

Your attempt is excellent. You are doing what the country wants : To be useful the book requires teachers knowing the spirit of religion.

(Sd). K. K. LELE.

5th May 1905.

RAI SAHEB PANNALAL MEHTA C. I. E. &C. PRIME MINISTER OF UDAIPUR STATE, WRITES :—

I have read the whole of the book and found it most useful and very well written. It is the first book of its kind I have come across, and if it is introduced in the schools I am sure it will be very useful.

(Sd). PANNALAL.

6th May 1905.

MR. G. GILNE, I. C. S, MAGISTRATE AND COLLECTOR OF SHAHABAD WRITES :—

I beg to acknowledge receipt of your well printed little text-book.

(Sd). G. GILNE.

31st May, 1905.

BABU RAGHUNANDAN PRASAD, B. A., B. L., VAKIL OF THE HIGH COURT OF CALCUTTA, WRITES :—

I have gone through "Rijustavamanjusha" with some care. It teaches many things good and useful in everyday life and helps to form one's character. I should like to see this book placed into the hands of a Pandit teacher who would select such portions of it as will best suit the student in his charge. I may point out also that portions of the book deal with matters too minute and particular to be appreciated by many.

(Sd). RAGHUNANDAN PRASAD.

No. $\frac{10568}{1018}$ *Bangalore 31st May, 1905.*

THE INSPECTOR GENERAL OF EDUCATION, MYSORE, WRITES :-

The book is a useful compilation of prayers and songs for students knowing Sanskrit.

(Sd). H. J. BHABHA.

6th June 1905.

PANDIT GOVIND LALL BANERJEE KAVIRATNA B.A., PANDIT, BOARD OF EXAMINERS' OFFICE, FORT WILLIAM, CALCUTTA, WRITES :—

I have gone through it with great interest. I am really struck with the nice get up of the book, its contents and their arrangement and the manner it has been adapted to the taste and requirements of young boys. The Chapter on " सामान्यनीति " in the supplement portion, which as a whole can not properly be included in a book of hymns, is a good suggestion and I fully appreciate the spirit which your beautiful collection breathes throughout.

(Sd.) GOVIND LALL BANNERJI.

Calcutta, 7th March, 1905.

The Patrika WRITES :—

This book is intended for students, specially Hindu students. It ought to be widely read in our schools as it will

instill into the minds of our youths a love and veneration for religion which, with the gradual expansion of knowledge may expand into deep faith. The essentiality of instilling is too obvious to require any explanation. The author intends to publish a series of such books suitable for students of various ages. The morals inculcated therein are of the most catholic character for the followers of the Hindu religion and there is nothing to wound the feelings of other religionists, rather there are instructions to follow the religion of the community to which one is born. Such books on morality and religion are in great need in these days of secular teachings and the author deserves encouragement from the educationists.

BANKIPUR, *17th March 1905.*

The Behar Times WRITES :—

We have received a copy of "Rijustavamanjusha" which is a collection of easy *stotras* for the use of young Hindu students. The book is admirably adapted for the purpose in view, and we have no doubt it will be largely availed of by Hindu students.

Calcutta, 29th May, 1905.

The Indian Nation EDITED BY N. N. GHOSHE ESQRE, B. A., BAR-AT-LAW, F. R. S. L. &c. PRINCIPAL, METROPOLITAN INSTITUTION WRITES :—

We have the pleasure to acknowledge a beautiful little book called *Rijustwamanjoosha*, published by the literary branch of the Saraswati Vidyalaya Institute. It is mainly, as its name indicates, a collection of hymns or *Slotras* in Sanskrit. It prescribes also the *Mantras* for daily worship, lays down the ceremonials, and inculcates lessons on the necessity of daily religious exercises. The lessons, the expositions and the notes to the *Slokas*, where they are given, are in Hindi. But the book may be used with advantage even by Bengalee boys for the *Slotras* are all in simple Sanskrit and may be understood without the aid of notes. It is one of the best collections we have seen and is admirably fitted for the use of boys (or girls) who have even an elementary knowledge of Sanskrit. Every Hindu student should have constantly this book by his side. It will be at once a pleasure and a discipline to read the *Slokas* over and over again until they are committed to memory, and until the prescribed exercises have become habitual.

Calcutta Gazette.

14th. February 1906

PART 1.

General Department

Notification.

No. 617—the 13th. February 1906.

List of Books recommended by the Text Book Committees for the approval of the Government.

Prize & Library Books

"RIJUSTAVAMANJUSHA."

Sd. G. GORDON

Off. Secy. to the Government of Bengal.

ब्राह्मण सर्वस्व—इटावा।

जुलाई १९०५ ई०

ऋजुस्तव मञ्जूषा—यह पुस्तक वास्तव में बहुत अच्छा पवित्र शुद्धान्तःकरण से लिखी गयी है। धर्म, नित्यकर्म की खास खास बातें, प्रातस्मरणादि, गणेश, विष्णु, शिव, आदित्य देवी महालक्ष्मी, सरस्वती, गुरू माता और पिता, इन देवताओं की स्तुति प्रार्थना करने, सेवादि करने, के

उत्तम उत्तम स्तोत्र इस पुस्तक में हैं। तथा इसके परिशिष्ट भाग में सदाचार द्विजाति कर्म, राजकर्म वेश्यकर्म और सामान्य नीति विषय प्रमाणों सहित सरल सुगम भाषा में लिखे हैं। धर्म प्रेमी देव भक्त सनातन धर्मी लोगों को यह पुस्तक देखने योग्य है। वास्तव में सनातन धर्मी लोग अपनी सन्तानों को बाल्यावस्था में ही यह ग्रन्थ पढ़ावें कण्ठस्थ करावें तो बहुत अच्छा हो।

(बङ्गला) हितवादी—कलकत्ता

११ अगस्त १९०५ ई०

ऋजुस्तव मञ्जूषा श्रीउमापतिदत्त शर्मा पाण्डेय प्रणीत। एखानो छात्र पाठ्य हिन्दी पुस्तक। ग्रन्थकार एखानकार श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयेर अध्यक्ष। एई पुस्तके धर्मतत्व, पञ्चदेव स्तुति, नित्यकर्म, सदाचार, गुरुजनेर प्रति व्यवहार ओ देश भक्ति प्रभृति विषये आलोचना आछे। तन्मध्ये वर्त्तमान काले प्रचलित हिन्दू आचार व्यवहारेर वर्णनाय पुस्तकेर अधिकांश पूर्ण। छात्रदिगके पौराणिक धर्मानुमोदित हिन्दू शिक्षादान कराई ग्रन्थकारेर उद्देश्य। से उद्देश्य सफल हइयाछे सन्देह नाइ। तबे "ऋजुस्तव मञ्जूषा" नामटी आमादेर सुप्रयुक्त बलिया मने हइल ना। लेखकेर प्राञ्जल रचना प्रणालिर प्रशंसा करिते हय।

श्रीकान्यकुब्ज हितकारी—कानपुर।

अगस्त १९०५ ई०

ऋतुस्तव मञ्जूषा—अर्थात् सनातन सत्कर्ममाला प्रथम भाग। यह पुस्तक पण्डित उमापतिदत्त शर्म्मा पाण्डेय प्रधानाध्यक्ष श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय नं० १५२ हैरिसन रोड कलकत्ता द्वारा विरचित हुई है और उन्हीं महोदय द्वारा केवल ।≈) आना मूल्य पर यह अमूल्य पुस्तक प्राप्त होती है। पुस्तक का रंग, रूप, छपाई, सफाई, कागज की उत्तमता और विषय प्रणाली के परिश्रम को देखते मूल्य बहुत ही स्वल्प है कदाचित पाण्डेयजी ने अधिक प्रचार के ही लिये ऐसा मूल्य नियत किया हो। यह पुस्तक सनात धर्म्म की पाठशालाओं के सम्पूर्ण विद्यार्थियों को कर कराने योग्य है क्योंकि इसमें एकसे एक उत्तम स्तो प्रातःस्मरण, स्नान, गणेश, सरस्वती, विष्णु, शिव, सूर्यादि के लिखे गये हैं जिसके पठन पाठन से चित्त को शान्ति प्रा होती है साथही साथ मूल का भाषा भी किया है जि केवल भाषा जाननेवाले पुरुष भी लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक समय के अनुसार बहुतही उत्तम बनी है इसलि संपूर्ण शिक्षा सूत्रधारसे सनातन धर्मी मात्र को एक एक प्रति अवश्य लेना चाहिये।

धर्म्मामृत पत्र—बम्बई।

नवम्बर—१९०५

यह पुस्तक "ऋतुस्नाव मंजूषा" यथा नाम तथा गुणः अर्थात् जैसा नाम है वैसेही गुणसे भरपूर है। मानो धर्म्मकी संदूक" है। इस पुस्तक में मनुष्य को प्रातःकाल शय्यासे उठकर क्या क्या कर्त्तव्य है इसका बोध बहुतही उत्तमता से दिया है। यदि यह पुस्तक सनातन धर्मियों की पाठशालाओं में बालकों को पढ़ाई जाय, तो बालक धर्म्मसे फिर कभी डगमगायेंगे नहीं। यह पुस्तक अवश्यही हिन्दूमात्रको अपने पास रखनी चाहिये, केवल रखनी नहीं परन्तु आप पढ़ें और अपनी सन्तान को भी पढ़ायें।

श्रीराघवेन्द्र—इलाहाबाद ।

मार्च १९०५ ।

कलकत्ते के श्रीविशुद्धानन्द सरस्वतीविद्यालय का हम सौभाग्य समझते हैं कि उसको श्रीयुक्त पण्डित उमापति दत्त शर्म्मा बी, ए, जैसे सुयोग्य प्रधान कार्य्याध्यक्ष मिल गये हैं। आपका ध्यान जिस ओर आकृष्ट हुआ है उस ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। आपने विद्यालय के छात्रों को धर्म्म शिक्षा देने के लिये ऋजुस्तवमञ्जूषा तैयार की है। इन दिनों भारतवर्षीय विचारशील महानुभावों का यह मत है कि स्कूल और कालेजेज़ में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को धर्मशिक्षा देने से भविष्य में बहुत कुछ लाभ हो सकता है। अतः इस मंजूषा के प्रचार से हमको बहुत कुछ लाभ की आशा है। यह पुस्तक सब सनातनधर्म की सम्प्रदाय के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य है। पुस्तक में पञ्चोपचार दशोपचार आदि पूजनों की विधि के साथ पञ्चायती देवी देवताओं के चुने चुने स्तव भी दिये गये हैं। छात्रों को श्लोक समझने में सुविधा हो इस लिये श्लोकों का भावान्तर भी दिया गया है। पुस्तक का परिशिष्ट भाग, पुस्तक में सर्वोत्तम "मास्टर पीस" है। हमारी समझ में यदि यह पुस्तक पृथक पृथक तीन भागों में कुछ और घटा बढ़ाकर छापी जाय और मूल्य क्रमशः एक दो और तीन आना रक्खा जाय तो मूल्य

अति सुलभ होने से इसका प्रचार बढ़ सका है। पाण्डेय जी की पुस्तक की एक एक प्रति Private institutions के अध्यक्षों के पास भी भेजनी चाहिये। पुस्तक की छपाई और सजावट की प्रशंसा माननीय पं० मदनमोहन मालवीय भी करते थे।

श्रीगोपाल पत्रिका—लखनऊ।

जनवरी १९०५।

यह पुस्तक अति उत्तम कागज और टाइप में उत्तम रीति से शोध कर शुद्धता के साथ छपी है और उपनिषद धर्मशास्त्र इतिहास पुराण आदि संस्कृत विद्यासागर से पाण्डेय उमापति दत्त शर्म्मा प्रधानाध्यक्ष श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयजीने उत्तम उत्तम धर्म्मरत्न निकाल कर इस ग्रन्थ में संग्रह किये हैं और वर्णाश्रमधर्म्म पञ्चदेव की उपासना आदि नित्यकर्म्म के सभी प्रयोग इसमें संग्रहीत हैं हमारी सम्मति में आर्य्यजाति की लोक यात्राके लिये यह ऋजुस्तव मञ्जूषा बहुतही उपयोगी ग्रन्थ है और हर एक साम्प्रदायिक मनुष्य इससे धर्म्मका लाभ उठा सक्ते हैं हम पाण्डेय जीके इस परिश्रम का धन्यवाद देते हैं वास्तव में संग्रह करने में उन्होंने बहुतही श्रम किया है।

नारद—छपरा ।

एप्रिल १९०५ ।

श्रीविशुद्धानन्द विद्यालय कलकत्ता के सुयोग्य प्रधान कार्य्याध्यक्ष श्रीयुत पण्डित उमापतिदत्त शर्म्मा द्वारा संग्रहीत संस्कृत श्लोकों की यह एक मनोहर मंजूषा (पिटारी) है। पञ्चदेवों के आवश्यक स्तोत्रों के अतिरिक्त प्रातःस्मरण सरस्वतीस्तोत्र, गुरुपूजा प्रभृति कई अन्यान्य उपयोगी विषयों के भी श्लोक इस में अर्थसहित दिये गये हैं और परिशिष्ट में, सदाचार, द्विजाति का कर्म, राजा का कर्म वैश्य का कर्म और नीति के श्लोक अर्थ सहित कहे हैं। यह पुस्तक लिखी तो गई है केवल हिन्दु बालकों के लिये; पर वास्तव में यह हिन्दुओं का मानवधर्मसार है और हिन्दु मात्र के पास रहने योग्य है। हिन्दु विद्यार्थियों के माता पिता अथवा अनुभावकों से हमारा यह अनुरोध है कि वे इस मंजूषा के भीतरवाले रत्नों का हार अपने बालकों के कण्ठ में पहिना कर उन की अलौकिक शोभा से अपना नेत्र सफल करें।

भारतीसर्वस्व—जयपुर ।

एप्रिल १९०५ ।

लोकमें मंजूषा (सन्दुक) बन्द करके रक्खी जाती है किन्तु विशुद्धानन्द विद्यालयके प्रधानाध्यक्ष पाण्डेय उमा-

पतिदत्त शर्म्माने इसको सर्व साधारणके लिए प्रकाशित की है। मंजूषामें सनातन धर्मके अनेक रहस्य रत्न भरे हैं। प्रत्येक सनातन धर्म्माभिमानी पुरुषको यह मंजूषा अपने घरमें रखनी चाहिये। क्योंकि इसमें सदाचार पंचदेवतास्तव प्रातःस्मरण शौचाचारादि सनातन विषयोंका बहुत ही ऋजु (सरल) तासे संग्रह कियाहै। पाण्डेयजीका उद्देश्य सर्वसाधारणको उपयोग प्रतीत होताहै क्योंकि आपने अति चिक्कण आर्टपेपर पर इस पुस्तकके मूलको छोटे टाइपसे और भाषार्थको मोटे टाइपमें छपवाया है। विशुद्धानन्द विद्यालयमें यह पुस्तक पढ़ाईजाती है। हम सनातन पाठशालाओंमें अध्यक्ष और प्रबन्धकर्त्ता महोदयोंसे इस पुस्तकको कोर्स (पढ़ाई) में नियत करनेका विशेष अनुरोध करते हैं। पुस्तकको उत्तमताको और गम्भीरताको देखते हुये ।≠ मूल्य केवल कागजकाही दाम है।

हिन्दी प्रदीप—इलाहाबाद।

एप्रिल १९०५।

इसमें सन्देह नहीं इन दिनों कलकत्तेके माड़वारी बहुत कुछ तरक्की कर रहे हैं। विशुद्धानन्द विद्यालयकी उन्नति देख मालुम होता है कि माड़वारी थोड़े दिनों में बहुत आगे बढ़ जायंगे- दैव की सानकूलतासे इसके प्रधान अध्यापक पण्डित

उमापति दत्त शर्मा बहुत सुयोग्य अध्यापक और मेनेजर मिल गये हैं उक्त पण्डित जी प्राणपणसे विद्यालय की उन्नति में लगे हैं उन्हों ने इस मंजूषा को यहाँ के बालकों के धर्मोपदेश के लिये रचा है। इस तरह की एक पुस्तक का होना अति आवश्यक था। इन दिनों के नव युवक प्रारम्भही से अंगरेजी का अनुशीलन करते करते अंगरेजीयत के तन्मय हो जाते हैं। आशा है इस पुस्तक को भी पढ़ते रहेंगे तो उनमें अंगरेजीपन इतना अधिक न व्यापेगा। इस पुस्तक में जो श्लोक हैं स्मृति और पुराण से उद्धृत किये गये हैं उनका केवल भावार्थ दिया गया है शब्दार्थ अनुवाद रहता तो अच्छा होता।

भारत जीवन—बनारस।

ता० १२ मार्च १८०५।

इस उत्तम ग्रन्थ को कलकत्ते के श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के प्रधानाध्यक्ष श्रीपण्डित पाण्डेय उमापतिदत्त शर्म्माजी ने संग्रह कर प्रकाश किया है। प्रथम आवृत्ति की सब पुस्तकें बिक गईं तो यह दूसरी आवृत्ति छपी है इसमें छोटे मोटे स्तवों का संग्रह है, जिनका काम प्रायः हिन्दू मात्र को पड़ता है। ऐसे ग्रन्थ की बहुत ही आवश्यकता थी। उसने एक भारी अभाव को दूर किया है, छापे की सफाई बहुत उत्तम है।

हिन्दीमास्टर—नरसिंहपुर ।

ता० १ मार्च १९०५ ।

यह पुस्तक हमने देखी वास्तविक इस पुस्तक की सुन्दरता छपाई तो अनोखी हैही लेकिन इसमें जो गुण हैं, सो भी हम बताये देते हैं, यह अनेक स्तोत्रों का संग्रह है, इस में श्रीगणेश, सरस्वती, विष्णु, शिव, सूर्य तथा गुरु आदि के स्तोत्र भाषानुवाद सहित संग्रहीत हुए हैं, इस प्रकार की पुस्तक हर एक हिन्दु के लिये लाभकारी है ।

श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार—बम्बई ।

तारीख ३१ मार्च १९०५ ।

कलकत्ते के विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के प्रधान कार्य्याध्यक्ष श्रीयुत पण्डित उमापतिदत्त शर्म्मा की विद्याकुशलता किसी से छिपी नहीं है । आये दिन आपने अपनी विद्या और योग्यता द्वारा अच्छी कीर्त्ति सम्पादन की है । यह पुस्तक भी आपकीही रची हुई है । इसकी प्रथमावृत्ति की समालोचना "श्रीवेंकटेश्वर समाचार" में होचुकी थी हर्षका विषय है कि यह दूसरी आवृत्ति प्रथम आवृत्तिकी अपेक्षा सब बातों में बढ़ीचढ़ी है। बहुतसी आवश्यक बातें जो प्रथमावृत्तिमें नहीं दीगई थीं वे सब इस आवृत्तिमें देदी गई हैं । यद्यपि यह पुस्तक श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्या-

समयमें ही पढ़ाई जाती है तथापि सनातनधर्मके माननेवाले सर्व पुरुषोंको उपयोगी यह पुस्तक सबके घरमें रहने और कंठ तथा हृदयके आभरणस्वरूप धारण करने योग्य है। इसकी छपाई और कागज ऐसा अच्छा है कि पुस्तक हाथमें लेतेही मन मोहित होजाता है। लगभग पौने दोसौ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ।≠) अधिक नहीं है।

सज्जन कीर्त्तिसुधाकर—उदयपुर।

ता: २७ फरवरी १९०५।

पण्डित वर पाण्डेय उमापतिदत्त शर्मा श्री विशुद्धानन्द विद्यालय कलकत्ता के प्रधानाध्यक्षने हमारे पास "ऋजुस्तव मंजूषा" नामक पुस्तक समालोचनार्थ भेजी है, जिसके अवलोकन करनेसे विदित हुआ कि यह पुस्तक सनातन धर्मावलम्बियों (तथा विद्यार्थियों) के लिये अति लाभकारी है उसमें पांच देवोंकी स्तुतियोंके सिवाय अन्य कई उत्तम २ विषय दिये हैं सो पुस्तकके पढ़नेसे ही विदित होते हैं उक्त पुस्तक को पण्डितजीने अति श्रम करके बनाई है जिसमें संस्कृतके श्लोकों का अन्वय और भाषा करदी है जिससे संस्कृत न जाननेवालोंको भी अति लाभ है। सनातन धर्मियों तथा विद्यार्थियोंको उचित है कि वे उक्त पुस्तकका अध्ययन कर लाभ उठावें।

मारवाड़ गजट—जोधपुर।

ता: २३ एप्रिल १८०५।

इस पुस्तक को कलकत्ता नगरस्थ "श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय" के प्रधानाध्यापक पाण्डेय उमापतिदत्त शर्म्मा, बी, ए, ने हिन्दुओं की धर्मसम्बन्धी वर्त्तमान अवस्था पर पूर्ण विचार कर शास्त्रों से सुसंग्रह कर भाषा टीका से अलंकृत किया है—पुस्तक श्लोकबद्ध एवं कण्ठाग्र करने योग्य है—इसमें हिन्दु मात्रके प्रात:काल से सायंकाल तक करने योग्य सब कार्य्यों का सरल विवरन है। इसको हम नित्य-कर्म्मपद्धति कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। पुस्तक को संग्रहकार ने विशेषकर हिन्दुबालकों के लिये इस अभिप्राय से निर्माण किया है कि वे इसको आद्योपान्त अध्ययन एवं मनन कर श्रद्धाभक्ति सम्पन्न हो निज जन्म को सार्थक कर अन्य जनों के लिये पथदर्शक बनें। इस प्रकार के धर्म्मोपदेशक पुस्तकों के अभावसे ही वर्त्तमान युग के अनेक नवयुवक निज धर्म्म विमुख हो आपाधम्भि बन बैठे हैं। इस अभावके दूर करने के उद्योगमें पाण्डेयजीका प्रयत्न प्रथमही समझना चाहिये। आशा है कि हिन्दुमात्र इस अनुपम पुस्तककी एक एक प्रति खरीद तदनुसार चलकर अपना जीवन एवं पाण्डेय जी के परिश्रमको सफल करेंगे। इस अमूल्य पुस्तकका दाम सर्व्व साधारण के लिये केवल ≀ आना मात्र ही रखा है।

मोहिनी—कन्नौज।

ता० ८ मार्च १९०५।

श्रीयुत पाण्डेय उमापतिदत्त शर्म्मा प्रधानाध्यक्ष श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय १५३ नं० हैरिसन रोड कलकत्ता द्वारा संग्रहीत, परमोत्तम उपयोगी पुस्तक है। इसमें धर्म्म निरूपण, नित्यकर्म्म सम्बन्धी आवश्यकीय बातें, पञ्चदेव की भक्ति, पञ्चदेव का प्रातः स्मरण, देवों के स्तोत्र; जलशुद्धादि मन्त्र शिखा बन्धन, यज्ञोपवीत धारणादि मन्त्र, पूजा विधि, पञ्चोपचार, दशोपचार, षोढ़शोपचारादि पूजा विधि; रात्रि के समय स्मरण करने योग्य देवताओं के ध्यान, स्तोत्र प्रार्थना, प्रणाम, देव देवियों के उत्तम उत्तम स्तोत्र, माता पिता आदि वृद्धों की पूजा, धर्म्म शास्त्रों के प्रमाण सहित सदाचार, द्विजाति कर्म्म इत्यादि विषय समावेशित किये गये हैं। पुस्तकें हिन्दूमात्र के परमोपयोगी कही जा सकती है विद्यार्थियों को इसके कण्ठस्थ कराने से उनकी चित्त वृत्ति धर्म्म विषय में स्थिर हो सकती है। तथा उनके हृदय में देव भक्ति का अङ्कुर दृढ़ हो सकता है। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण बड़ी उत्तमता से छापा गया है। कागज और छपाई ऐसी बढ़िया है कि आद्योपान्त बिना देखे जी नहीं मानता, भक्ति शून्य जन भी इसके पढ़ने की इच्छा करता है।

भारतमित्र—कलकत्ता ।

ता० ११ फरवरी १९०५ ।

कलकत्ते के श्रीविशुद्धानन्द विद्यालय के प्रधानाध्यक्ष पण्डित उमापतिदत्त शर्मा जी की ऋजुस्तवमंजूषा नामक पोथी दूसरीवार छपी है। अब के इसने एक बड़ा ही मनोहर रूप धारण किया है। हिन्दू बालकों हीके लिये नहीं अब वह हिन्दूमात्र के लिये उपयोगी होगई है। सब स्तोत्र सानुवाद छपे हैं और कई एक बहुत ही उपदेशमय लेख इस में छपे हैं।

ता० ११ मार्च १९०५ ।

वर्त्तमान समय मे भारतीय विद्वान इस प्रश्नकी मीमांसा करना वहुत आवश्यक समझते हैं कि स्कूल कालिजों में धर्म्म की शिक्षा दीजा सकती है या नहीं, और देना उचित है कि नहीं। कुछ लोग धर्म्मको फालतू और समय नष्ट करनेवाली वस्तु बता कर विद्यार्थियों को उससे पाक साफ रखने की सलाह देते हैं। वह धर्म्म के कट्टर प्रेमी भारतवासियों की सन्तान को धर्म्महीन बनने से ही देशको उन्नति की चोटी पर पहुंचा देने की आशा करते हैं। किन्तु अधिकांश लोग इस राय के विरुद्ध हैं वह स्कूल कालिजों के विद्यार्थियों के जी में धर्म्मका बीज बोना—अपनी नष्टप्राय पुरानी कीर्त्ति का जीर्णोद्धार करना

अत्यावश्यक समझते हैं और इस के लिये यथेष्ट परिश्रम करते हैं। इसी विचार से कलकत्ते मे श्रीविशुद्धानन्द विद्यालय की नीव पड़ी है और इसी विचार की पुष्टि के लिये उक्त विद्यालय के प्रधानाध्यक्ष श्रीयुक्त पाण्डेय उमापति दत्त शर्मा बी० ए० ने ऋजुस्तवमञ्जूषा नाम की पुस्तक तय्यार की है।

नाम देखकर यही अनुमान होता है कि ऋजुस्तवमजूषा में सरल सरल स्तोत्र होंगे परन्तु वास्तव में सिर्फ यही बात नहीं है। यह मंजूषा हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थरूपी आकरों से संग्रह किये हुए कर्त्तव्य कर्मरूपी रत्नों से परिपूर्ण है। हिन्दू जीवन धारण करने के लिये जिन जिन आचार विचारों की जरूरत है उन सबको संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी भाषामें भली भाँति समझाया है, धर्मका विशदरूपसे सोदाहरण वर्णन किया है पञ्चदेवों के स्तोत्र भावार्थ सहित दिये हैं, पूज्यजनों के प्रति छोटों का कर्त्तव्य बताया है और बताया है परिशिष्ट में सदाचार, उसमें द्विजाति का कर्म, राजा का कर्म, वैश्यका कर्म और नीति के श्लोक अर्थ सहित कहे हैं। यह हिन्दुओं का मानव धर्मसार है और हिन्दूमात्रके पास रहने योग्य है। विशेष हर्षकी बात है कि इस पुस्तक का आदर हुआ है और इसीसे यह परिवर्द्धित होकर दूसरी बार पुष्ट और चिकने कागज पर छपी है। छपाई सफाई देखने लायक है। पुस्तक १५६ पृष्ठमे पूरी हुई है।

हितवार्त्ता—कलकत्ता ।

ता० १८ मार्च

इस नामकी पुस्तकका परिचय कई एक मास पहिले दिया जा चुका है। अतएव इस नामके देखतेही लोग समझ लेवेंगे कि शायद एकही पुस्तकको दोबारा समालोचना की जा रही है। बात भी यथार्थ वही है। क्यों कि यह उसी मञ्जूषा को दूसरी आवृत्ति है। परन्तु पहिली आवृत्ति से दूसरी में इतना अन्तर है कि जैसे दूजके चन्द्रमासे पौर्णमासी के निशानाथसे। मानो पहिली आवृत्तिका सम्पूर्ण कलेवर परिवर्तन हो गया। छपाई, सफाई, और कागजकी उत्तमता की तो बातही छोड़ दीजिये। इस मञ्जूषा के भीतर इतने अमूल्य रत्न भर दिये गये हैं कि इसकी जो कुछ प्रशंसा की जाय वह थोडीही है। पञ्चदेव पूजन नित्यकर्म, श्रीमहा-लक्ष्मी स्तोत्र और सरस्वती स्तोत्र, गुरुजन की वन्दना, धर्म-शास्त्रानुसार माता पिता बडे भाई आदि बड़ों की पूजा आदि तो इस पुस्तक के नामानुसार बहुत उचित ही दिये गये हैं, किन्तु मुझे खेद इतनाही रह गया कि ग्रन्थके आदिमें "धर्म" शीर्षक तथा अन्त में "परिशिष्ट" शीर्षक जो दो अमूल्य रत्न ग्रन्थकर्त्ताने इस पिटारी में भर दिये हैं उनके उपयोगी इस पिटारी का नाम नहीं रख गया। नामसे साधारण लोग यही समझेंगे कि जैसे दो चार पैसेकी

"नित्यकर्म्म" आदि स्तोत्रकी पुस्तिकायें विकती हैं यह भी उसी ढंगकी एक पुस्तक होगी। किन्तु बात सम्पूर्ण विपरीत है। उक्त दो शीर्षकों में जो जो विषय दिये गये हैं उनकी सूचीमात्रदे देनेसे हमारे इस कथनकी उपयोगिता स्पष्ट हो जायगी।

"धर्म्म" धर्म्महीन मनुष्य पशुसे भी नीच (हरिश्चन्द्रसे); मनुष्य की धर्म्म विमुखता (तुलसी दास), शिष्यके प्रति गुरु का उपदेश, धर्म्मका सरल वर्णन, अनार्य्य प्राचीन सभ्य जातियों में धर्म्मका विचार, धर्म्म के तीन रूप (आत्मा, संसार, परमात्मा के सम्बन्ध में) स्वदेश भक्ति श्रेष्ठतर धर्म्म। परिशिष्ट में होजाति कर्म्म धर्म्म शास्त्रसे, राजा का कर्म्म (कर्त्तव्य) धर्म्मशास्त्र से, वैश्यका कर्म्म धर्म्म शास्त्रसे।

यह पुस्तक साधारणतः हिन्दू बालकों वा विद्यार्थियों के विशेष काम की है। पर उल्लिखित आदि और अन्तके दो निबन्ध प्रत्येक एण्ट्रेंस स्कूल की चौथी और तीसरी कक्षामें पढ़ाये जाने योग्य हैं। परिशिष्ट में मनुस्मृति तथा पञ्चतंत्रादि से उत्तम उत्तम श्लोक चुने गये हैं। आदिसे अन्त तक हर एक श्लोक का अर्थ सरल भाषा अनुवाद में दिया गया है। पुस्तक का मूल्य कुछ नहीं है, केवल ।≈) छ आने। हम इस पुस्तक के संग्रहकर्त्ता पं० पाण्डेय उमापतिदत्त शर्म्मा, प्रिन्सिपल श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय कलकत्ता के परिश्रम और उदारताकी प्रशंसा करते हैं।

हिन्दी बङ्गवासी—कलकत्ता

३ एप्रिल १९०५।

इस असार संसारमें धर्म्महो सार है। धर्म्महीके बल दुनिया चलती है। फिर हिन्दुओं के प्रत्येक कार्य्यसे धर्म्मका सम्बन्ध है। धर्म्मोपदेशहीके लिये इस उत्तम पुस्तकका संग्रह किया गया है। इसमें प्रात कालसे शयन पर्य्यन्तके सब कृत्यों की विधि मनोहर श्लोकों में लिखी गई है। पहले पञ्चदेव परिचय, पञ्चदेव प्रणाम फिर व्याकरणसे धर्म्म शब्दकी व्युत्पत्ति लिखी गई है। इसके उपरान्त यह दिखाया गया है कि धर्म्महीन पुरुष पशुसे भी हेय है। आगे चल कर मनुष्य की धर्म्मविमुखता, शिष्यके प्रति गुरुका उपदेश एवं धर्म्मका सरल वर्णन हैं। अन्यान्य प्राचीन सभ्य जातियों में धर्म्मका विचार, धर्म्म की परिभाषा, धर्म्मके तीन रूप तथा स्वदेशभक्ति श्रेष्ठ धर्म्म है, यह दे कर नित्यकर्म्म की कुछ जरूरी बातें कही गई हैं। सवेरे उठकर तीन कुल्लाकर भूमिस्पर्श, जगदीश्वरका नाम लेना, सबसे पहले दहना हाथ देखना, शौच-मट्टी लगाकर शुद्धि करना तथा कुल्लादि करना, दन्तधावन विधि और मन्त्र आदि, देहशुद्धि मन्त्र, सूर्य्य, तुलसी, गौका प्रातःप्रणाम मन्त्रके अनन्तर पञ्चदेवकी भक्ति तथा एकता, स्नानके पहले कौन कौन पदार्थ खाया जा सकता है, स्नान, जलशुद्धिमन्त्र, स्नानमंत्र, गङ्गास्नानमें पहले शरीर में मृत्तिका

लेपन की विधि एवं मन्त्र, गङ्गाजी का ध्यान, गङ्गास्तोत्र, गङ्गाप्रणाम, शिखाबन्धन भस्म तथा चन्दनधारण करनेके मन्त्र, नया जनेऊ धारण करने और पुराना त्यागनेका मन्त्र सूर्य्यार्घ, तुलसी प्रणाम, स्नान और पत्ता तोड़नेका मन्त्र, विप्रपादोदक धारण करने का माहात्म्य एवं मन्त्र, पञ्चोपचार, दशोपचार, षोड़शोपचार, अड़तीसोपचार, पूजाकी विधि, आसन शुद्धि-मन्त्र, फूल चढ़ानेकी विधि, फूल हाथमें लेकर प्रणाम करने का मन्त्र, साष्टाङ्ग प्रणाम, शङ्खमें रखे हुए जलको शिर पर धारण करने का मन्त्र, विष्णुका चरणामृत पीकर शिर पर धारण करनेका मन्त्र, भोजन के उपरान्त एवं शयन करने के पूर्व्व स्मरण करनेका मन्त्र, पञ्चदेवोंका ध्यान, स्तोत्र, प्रार्थना प्रणाम, क्षमापण, महालक्ष्मी स्तोत्र, एवं सरस्वती स्तोत्र लिखे गये हैं। इसके बाद माता पिता आदिकी पूजा, गुरु, माता, पिताकी वन्दना एवं सदाचार की बात कह कर पुस्तक समाप्त की गई है।

ऋजुस्तवमंजूषा सनातन सत्कर्ममाला का प्रथम भाग है। अभी इसके दो भाग और मुद्रित होंगे। इसकी यह दूसरी आवृत्ति है। इस आवृत्ति में श्लोकों की भाषा टीक करके प्रणेता पण्डित उमाश्रुतिदत्त पाण्डेय श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके प्रधानाध्यक्षने इसे और भी सरल तथा उपयोगी बना दिया है। भाषा टीका भी मनोहर और सबके समझने लायक हुई है। सचमुच ही पण्डितजीने

उक्त पुस्तक को प्रणीत कर संसार का बड़ा उपकार किया है। पुस्तक बालकों के लिये ही क्यों समस्त पुरुषों के लिये लाभदायक है। नये रोशनीवाले भले ही इससे मुह मोड़ें पर सनातन धर्मावलम्बी सज्जनों के लिये तो यह आदर की सामग्री तथा अनुपम रत्न है। इसकी एक एक प्रति सब हिन्दुओं के घरमें रहना चाहिये। पुस्तक की छपाई सफाई भी अच्छी है। ऐसे अमूल्य पुस्तक का न्योछावर ।॥) कुछ भी नहीं है।

जासूस गहमर—गाजीपुर।

अङ्क ६० एप्रिल १९०५।

कलकत्ता विशुद्धानन्द विद्यालय के प्रधानाध्यक्ष पं० उमापतिदत्त ने यह अनुपम संग्रह किया है। इसमें नित्यकर्म पूजा अर्चन और धर्म सम्बन्धी सभी बातें बहुत उत्तमता से लिखी गयी हैं कौन कार्य किस समय किस आचार और किस श्लोक पाठ से कैसे करना चाहिये और उस श्लोक का अन्वय तथा भाषा में सुगम अर्थ लिखा है। फिर पञ्चदेव की वन्दना शिष्टाचार की विधि गुरुजन की वन्दना आदि सब आवश्यकीय बातें इसमें बड़ीही उत्तमता से बतलायी गयी हैं। पुस्तक बड़ी उत्तमता पूर्व्वक आर्ट पेपर पर बहुत सुन्दरता से छपाई गयी है।

भारतधर्म—मुम्बई

सोमवार ता: ६।३।१९०५।

इसमें प्रत्येक सनातनधर्मी हिन्दूको प्रातःकालमें उठकर रात्रिको सोते समयतक जो जो नित्य नैमित्तिक धार्मिक क्रियाकलाप करने होते हैं उन सबकी पूरी २ विधि उस उस क्रिया सम्बन्धी श्लोकोंके सहित दी गई है। इसके अतिरिक्त पञ्चदेवताओंके स्तोत्र, माता' पिता—गुरू की बन्दनाके श्लोक, सदाचार, सामान्य नीति आदि कितनेही उपयोगी विषयों का संग्रह इसमें किया गया है। उक्त पुस्तकका द्वितीय संस्करण हमारे पास आया है। इसमें पहिली आवृत्ति से एक बात विशेष पायी जाती है। वह यह कि इस बार सब संस्कृत श्लोकोंका भाषानुवाद दिया गया है। और इस बातको हम विशेष उपयोगी समझते हैं। यह पुस्तक सनातनधर्मी विद्यार्थियोंके कण्ठ करने योग्य है। केव इतनाही नहीं किन्तु प्रत्येक हिंदूके लिये संग्राह्य है। पुस्त की छपाई सफाई अच्छी है।

सरस्वती—इलाहाबाद।

मई १९०५।

इस पुस्तक का रूप बहुत ही मनोहारक है। काग़ बहुत चिकना और टाइप बहुत सुन्दर है। इसका टाइटल

पेज देखते ही तबीयत खुश होजाती है। यह पूर्वोक्त विद्या-लय की पाठ्य पुस्तक है। यह इसकी दूसरी आवृत्ति है। पहली आवृत्ति के बहुत जिल्द बिक जाने से यह सिद्ध है कि लोगों ने इसे पसन्द किया है। इसमें धर्म्म की व्याख्या है, नित्यकर्म्म की बहुत सी बातें हैं; और देवताओं के ध्यान, आवाहन, स्तोत्र और बन्दना आदि भी हैं। अन्तमें द्विजाति कर्म्म और सामान्य नीति भी है। संस्कृत के श्लोकों का भावार्थ सरल हिन्दी में दिया हुआ है। पुस्तक बहुत शुद्ध छपी है और जिस कामके निमित्त बनाई गई है उसी करने के लिये जो बातें आवश्यक हैं वे सब इसमें हैं।

मञ्जुभाषिणी—काञ्चीपुरी

३ मार्च १९०५।

सनातनसत्कर्म्ममालायाः प्रथमो भाग एष एतन्नामा सबहु-मान मंग्यकारि। सोऽयं कलिकातास्थ विशुद्धानन्दसरस्वती-पाठशालाध्यक्षेण पाण्डेय उमापतिदत्तशर्म्मणा न्यबन्धि।

निबन्धोयमत्युत्तमो विद्यार्थिनामवश्योपादेयोऽत्युत्तमावश्यक नानाविधस्तोत्रादि प्रचुरः पञ्चदेवताराधकानामखिलाना मप्यास्तिकानां रत्नवत्सर्वदा करतल मलंकर्त्तुं प्रभवतीत्य-माय वयं वदामः।

पत्राणां श्लक्ष्णचिक्कणतान्तरता फल फलितं मुद्रणसौष्ठवं च हरति मनो नागरकाणाम्।

इदं च वक्तव्य मन्ते स्य ग्रन्थस्य "सा मान्यनीतिः' इति शीर्षा दधो संग्रहीतास्सर्वे श्लोका: प्रायो बालकै: कण्ठे धार्या एवेति ।

भूमिहार ब्राह्मणपत्रिका—मुज़फ्फरपुर ।

एप्रिल १९०५ ।

बालकों को धर्मशिक्षा देने के लिये यह उपयोगी पुस्तक बनी है पुस्तक में पञ्चोपचार, दशोपचार पूजन विधि, स्तोत्र आदि विषय हैं । संस्कृत श्लोक के नीचे उनका हिन्दी अनुवाद है । आजकल धर्मकी शिक्षा बालकों को स्का कालिज में नहीं दी जाती है, जिसके कारण बालक आ धर्म में स्पृहा खो बैठते हैं । पण्डितजी का उद्योग इस मा में प्रशंसनीय है । आशा है कि इस पुस्तक का पूर्ण प्रचा होगा । छपाई कागज़ अत्यन्त सुन्दर है ।

—o—

बिहारबंधु—बाँकीपुर

१५ मार्च १९०५ ।

पुस्तक अच्छे कागज और सुन्दर टाइपों में शुद्ध है । संग्रहीता का परिश्रम बहुल उपयोगी है । "ऋतु मञ्जूषा" इसे न कह कर हम नित्यकृत्यविधिबोधपगि कहेंगे । यह सर्व साधारण सदाचारी मात्रके लिये उप है । सबको उचित है कि ।≠) देकर इसका संग्रह करें ।

राजपूत—आगरा

मई १९०५।

इसमें धर्म, नित्यकर्म, पूजा आदि की विधि लिखी है। सनातन हिंदू धर्म के सिद्धान्तानुसार यह पुस्तक लिखी गई है छपाई व कागज उत्तम है।

— o —

कुछ चुनी हुई सम्मतियाँ

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज काशी (Queen's College Benares) के प्रधान ज्योतिषाचार्य्य विविध उपाधि विभूषित महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के फेलो तथा परीक्षक, काशी नागरी प्रचारिणी सभाके सभापति, एसियाटिक सोसाइटी आफ बेंगाल के प्रधान सहायक का पत्र—

पण्डित श्रीउमापति दत्त पाण्डेयजी की रचित "[illegible]" वस्तुतः रत्न मञ्जूषा है। इसके पढ़ने से बालकों के हृदय में दृढ़ सनातन धर्माङ्कुर उत्पन्न होगा जो कि प्रायः इतर भाषाओं के पढ़ने पर भी स्थिरता ही रहेगा। इसके पूर्व मैंने ऐसे उपकारी ग्रन्थ को नहीं देखा था। इसके पढ़ने से प्राणिमात्र का उपकार है, इसलिए इसके रचयिता को इसके लिये जितना धन्यवाद दिया जाय सब थोड़ा है।

— o —

गुरुमण्डलनेता निखिलशास्त्र निष्णात माण्डलिक धर्म-धुरन्धर पण्डित प्रवर बालरामजी स्वामी उदासीन का पत्र।

ॐ नमोऽन्तर्यामिणे।

धरामरवर।

भवदुपहृतामनर्घस्तुतिरीतिनीतिरत्नपेटिकामाप्यालोक्य समालोच्य च प्रमुदित स्वान्तेन मयेदमेवतावद् सकृद् व्याह्रियते यत्किलैकमनीषेयं लोकोत्तराकृतिरा युष्मतामेव भवतामिति

मानामिम आर्यवंशप्रसूताः सुकुमारमतयोऽनुष्ठेयार्थानवधारणेन व्यामुह्यमाना अन्ध-गोलाङ्गूल न्यायेनानर्थमुपढौकितमनित्यनर्थागवद् हृदये भवद्भिर्यदिदमन्ते वासिन' सदाचार नय व्यवहारं चामरवर्योपचयितविवेकविज्ञान सिंहासन आसीनीकर्त्तु सः कृत्यमनोहृत' तत्कोनाममत्सरी न प्रशंसेत मानवशासनानानीत्यवमाना पो सोगोपचारोद रामायोपदेशसाम ऽचारादर्शाचाराकीकरज रत्नगर्भाखल्वेषा मञ्जु भूषेवकीर्त्तावामिति मे मनीषा

एतदद्भुतैरत्नज तैरलङ्क्रियतां कुमारैरात्मीयकण्ठ इति मे मह्त्युत्कण्ठा

यदत्र वैकल्यं तद् द्वितीय तृतीय भाग निर्माणेन परिहर्तुं प्रतिज्ञातमेव श्रीमद्भि तिन्नात् किञ्चिद् वचनीयं मया।

सफलयतवेमं परिश्रमं मुन्तर्यामी परमात्मेत्या शास्ते।

— o —

मारवाड़ जोधपुरस्थित वैदिक पाठशाला के हेड पण्डित सुयोग्य श्रीभगवतीलाल शर्माजी का पत्र।

अपरञ्च भवद्भिरुपहृता "कुलभूषण" मद्दृशिका प्राप्ता मन्मनोमोदी चकारेति प्रभूततर कृत् यत्नेनापि रोद्धुं न पार्यते। अन्यशास्त्रा धर्माद् विमुखी भवति: संगृह्य विकासी नानाविध दुःख मकार ग्राहादि सङ्कुलं संसारक्षीरोदधिं तितीर्षूणां सनातनधर्म्मो द्वीपं प्रविविक्षाणाम् भव्यजनानामुद्धरणा

समर्थोऽभवम् अथवास्या मनुसंहितोक्तनानाग्रंथस्थ धर्मनीतिविषयस्य समासेन दर्शितानिपुणं व्याकरणशीर्षाणां प्रधानं सर्वमिति मन्यते स्वाध्यायं भवत्परि श्रमसफलयितो पुनश्च प्रशस्यावयम् कोटिशः श्रीजगदीश्वरं परमेश्वरमाद्यन्तं प्रार्थया-महे तत भगवता भवता प्रारब्धा "सत्कर्ममाला" निर्विघ्नं समाप्तिमेतिति)

गवर्नमेण्ट कालेज काशी (Queen's College, Benares) के मान्यवर प्रोफेसर पण्डित श्रीमाधवप्रसाद पाठक का पत्र :—

"सज्जनसमस्ता" का नया संस्करण अनूठा हुआ। यह धर्म पुस्तक का छोटा ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है। इसको बाल, युवा, वृद्ध सबको अपने पास रखना चाहिये। इसे मैं आद्योपान्त पढ़ गया और मेरे विचार में यह धर्म पुस्तक मुझको अत्यन्त उत्तम जान पड़ी। पाठशालाओं में यदि इसका प्रचार किया जाता तो मेरी समझ में बालकों का बड़ा उपकार होता। धर्म पथ का जानना और श्लोकों का कण्ठ करना सनातन धर्मावलम्बियों के लिये उचित ही है। इस ग्रन्थमें दोनों बातें पाई जाती हैं इस कारण इसको "धर्ममार्ग प्रदर्शक" कहना भी ठीक है। मेरी यही अभिलाषा है कि लोग इससे लाभ उठावें और ग्रन्थकर्त्ता का परिश्रम सफल होवे।

— o —

श्रीमन्महाराजाधिराज जयपुराधीश के माननीय पुरोहित पण्डित गोपीनाथजी एम, ए, का पत्र।

यह पुस्तक वास्तव ही में सनातन सत्कर्म माला का प्रथम भाग है। जो उत्तम श्लोक और नीति वाक्य इस में संग्रहीत किए गए हैं वे हिन्दूमात्र के कण्ठ करने योग्य हैं। धर्म पर जो छोटा सा निबन्ध पुस्तक के आदि में दिया गया है वह बहुत सारगर्भित होने के साथ साथ सरल और सुगम भी है।

"विद्यार्थियों को कुछ ज़रूरी बातें" का लेख भी बहुतही लाभ दायक और अनूठा है। इस उत्तम पुस्तक का सब पाठशालाओं ही में, जहाँ हिन्दुओं के बालक पढ़ते हों, प्रचार होना श्रेयस्कर है।

मेयो कालेज, अजमेर (Mayo College, Ajmer) (राजपूताना के सम्पूर्ण महाराज कुमारों का विद्याध्ययन स्थान) के प्रधान धर्मोपदेशक पण्डित श्रीबुलाकीराम शास्त्री विद्यासागरजी का पत्र।

यद्यपि एक दिनमें विशेष पूर्णावकाश के न मिलने से आद्योपान्त पढ़ने का सुअवसर नहीं हुआ है तथापि स्थाली पुलाकन्याय से एकाधही स्थान के देखनेसे ही पुस्तक की उत्तमतता और उपयुक्तता प्रत्यक्ष दीखती है। मेरी सम्मति में पुस्तक सनातन धर्म के अनुकूल वर्णाश्रम मर्य्यादा के अनुसार समयोपयोगी है। संग्रह उचित रीति से किया गया है। संक्षेप से आह्निक कर्मोंका बीजारोप और सांसारिक जीवन के लिये आवश्यक सदाचार तथा नीति का भी उपदेश ठीक ही लिखा है। पुस्तक बालकों के लिये पूर्णोपयोगी है।

जिला पुर्निया, देवढ़ी चम्पानगर महाराज कुमार माननीय श्रीकीर्त्यानन्द सिंहजी बी, ए, का पत्र।

यह पुस्तक सर्व्व हिन्दुओं के लिये बहुत ही उपयोगी मालूम होती है, विशेषतः बालकों के लिये बड़ाही उपकारी है।

जिला पुर्निया देवढ़ी श्रीनगर साहित्य-सरोज श्रीमान राजा कमलानन्द सिंहजी का पत्र।

आपका यह संग्रह विशेष उपयोगी हुआ है। इसमें देवताओं के स्तोत्र तथा अन्यान्य जितने विषय छपे हैं सब चुने हुये हैं और आदर करने योग्य हैं। इस ग्रन्थ के अधिकाधिक प्रचार द्वारा ईश्वर आपके उद्देश्य और परिश्रम को सफल करें।

श्रीमन्महाराजाधिराज दतियाधीश के शिक्षक तथा स्थानीय हाइस्कूल के हेडमास्टर पण्डित रघुनाथ राव बी, ए, का पत्र।

यह पुस्तक हिन्दू छात्रों के लिये अवश्य ही परमोपयोगी है। आपका परिश्रम सदा सफल होने के योग्य है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अनुसार छात्र धर्म से निरे अनभिज्ञ रहते हैं। यह अभाव आपकी रची हुई पुस्तकों के पढ़ने से दूर हो सका है। जो आपने इस पुस्तक के दूसरे और तीसरे भाग को भी प्रकाश करने का संकल्प किया है वह बहुत उत्तम है। आपके परिश्रम पर हम आप को बारम्बार धन्यवाद देते हैं। ईश्वर इस आर्य्यावर्त्त में आप सदृश धर्माभिमानी सत्पुरुषों की वृद्धि करे जिस से देश का हित होवे।

अवध-सुलतानपुर-दियरा के सुयोग्य कुमार अवधेन्द्रनाथ प्रताप सिंहजी का पत्र।

"ऋजुतत्व मंजूषा" एक अपूर्वरत्न है। सनातनधर्मावलम्बियों को अपने बालकों को धर्मविषयक शिक्षा देने के लिये इससे बढ़कर कोई पुस्तक नहीं मिल सकती। इस के अवलोकन से अपने धर्म की बहुत सी बातें मालूम हो सकती हैं। पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

राजधानी छड़ाहा के धर्मनिष्ठ श्रीमान् राजा रघुराज बहादुर सिंहजी देवका पत्र—

श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय कलकत्ता के प्रधान अध्यापक सुयोग्य श्रीमान पाण्डेय उमापति दत्त शर्मा जी ने वहाँ के ऋजुबुद्धि वाले बालकों पर कृपा कर उन के हितार्थ "ऋजुभाव मंजूषा" नामक ग्रंथ में विविध विषय के श्लोकों

तथा दोहों का संग्रह किया है। इस संग्रह से केवल उक्त पाठशाला ही के नहीं किन्तु सर्वसाधारण जनों के लड़के भी निज निज लाभ उठाने का उद्योग कर सकते हैं।

युक्त प्रान्त की गवर्नमेण्ट के शिक्षा विभाग कानपुर प्रान्त के असिसटेण्ट इन्सपेक्टर सुयोग्य पण्डित दीनदयालु त्रिपाठी जी का पत्र।

मैं ने इस अपूर्व ग्रन्थ को देखा देखतेही आरम्भ से अन्त तक इस के उपयोगी विषयों पर श्रद्धा बढ़ती गई। अन्त में मेरे हृदय में यह भाव स्थिर हुआ कि यह पुस्तक मातृवर्ग संसार यात्रा के निमित्त एक दृढ़ नौका बनाई गई है। यह प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी के पास रहने के योग्य है। प्राय: आजकल के विद्यार्थियों का चित्त पढ़ने लिखने पर निरालम्ब और डावांडोल रहता है उनको तो अपना जीवन सुधारने के लिये एक २ प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिये। इस में प्रीति करने से उन का ऐहिक आमुष्मिक दोनों कार्य सिद्ध होंगे।

राजपूताना-कोटा कुनाडी के रईस श्रीमान् विजय सिंह जी का पत्र।

मैं समझता हूं यह पुस्तक आप के विद्यालय के छोटे विद्यार्थियों के वास्ते बहुत उपयोगी होगी। यह एक अच्छा संग्रह है जिसके प्रचार से नवयुवकों पर अच्छा प्रभाव पड़ने की आशा की जा सकती है। छपाई इस पुस्तककी बहुतही उत्कृष्ट है।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल के डेपुटेशन कार्य्यालय काशी का पत्र।

आप की पुस्तक "सद्गुणमञ्जूषा" भारतधर्म महामण्डल के प्रधान कार्य्यालय

द्वारा निगमागम चन्द्रिका के दफ्तर में पहुँचो। मैं महामण्डल की आज्ञा से यह पत्र लिखता हूँ। आप की पुस्तक के विषय में हमारी सम्मति निगमागम चन्द्रिका संख्या १२ में प्रकाशित हुई है। शीघ्र ही चन्द्रिका आप के पास पहुँचेगी।

आशा है आप यह सुन कर विशेष प्रसन्न होंगे कि आप की पुस्तक को महा-मण्डल ने अपने शिक्षा विभाग की पुस्तकों में ग्रहण किया है।

पंजाब—दिल्ली के हिन्दू कालेज के प्रधानाध्यक्ष द्वारा अनुमोदित संस्कृत के प्रोफेसर और धर्मोपदेशक धर्मनिष्ठ पण्डित हरनारायण शास्त्री गोस्वामी जी का पत्र।

वास्तव में एक अच्छा संग्रह है। प्रारम्भिक कक्षाओं में विद्यार्थियों को धर्मशिक्षा देने के लिये उपयोगी है। सदाचार सम्बन्धी बहुत सी काम की बातें इस में आ गई हैं। प्रथम इस में धर्म का वर्णन संक्षेप में अच्छी रीति पर किया गया है। इस के बाद नित्यकर्म और पंच देवताओं के स्तोत्र ध्यान आवाहनादि के क्रम से अच्छे लिखे गये हैं अन्त में चातुर्वर्ण्य कर्म और कुछ नीति के श्लोक लिख कर परिशिष्ट में संक्षिप्त सदाचार वर्णन कर के ग्रन्थ को उपयोगी कर दिया है। सर्वथा यह ग्रन्थ मान करने के योग्य है और धर्मशिक्षा की प्रारम्भिक कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ाने योग्य है।

परन्तु इस ग्रन्थ के विषय में दो बातें कहनी हैं एक तो यह कि प्रथम धर्म के वर्णन में कुछ विस्तार पूर्वक नवीन युक्तियों के साथ धर्म के गूढ़ तत्व वर्णन किये जाते तो बहुत अच्छा होता जिससे कि विद्यार्थियों के नास्तिक भाव निकल जाते और वे आस्तिक भाव को स्वीकार करते। इस बात की बड़ी आवश्यकता है। नित्यकर्म और स्तोत्रादिकों पर तबही उन की श्रद्धा जम सकती है जब कि धर्म के गूढ़ रहस्य उन को नूतन युक्ति और शास्त्र के प्रमाणों द्वारा समझा दिये जावें और प्रथम उनका हृदयक्षेत्र आस्तिकता के जल से सिंचित हो जाय

दूसरी बात यह कि नीति के श्लोकों का कुछ अधिक समावेश होता तो अच्छा था और धर्म और नीति का विषय अलग और नित्यकर्म का विषय अलग हो तो अच्छा है। आगामी संस्करण में छापे की अशुद्धियाँ मिटाने के लिये स्वयं ग्रन्थकर्ता ने भूमिका में लिखा है।

मेरी सम्मति में यह ग्रन्थ प्रायः प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये तो उपयोगी है ही परन्तु यदि सनातनधर्मी गृहस्थ मात्र इस की एक एक प्रति अपने घर में रखें तो बहुत लाभ होगा। ग्रन्थकर्ता का परिश्रम सर्वथा प्रशंसनीय है।

निगमागमचन्द्रिका—मथुरा।

मार्च १९०५ ई०

इस ग्रन्थ में धर्म की महिमा, नित्यकर्म की आवश्यकी बातें और पञ्चदेव की उत्तम उत्तम स्तुतियाँ बहुत ही प्रशंसनीय रीति पर संगृहीत की गई हैं। बालकों के चित्त में भक्ति की रुचि और पञ्चउपास्यदेवताओं के स्तोत्र की शिक्षा के लिये यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के द्वारा पाँचों सम्प्रदाय के बालकों को बहुत कुछ लाभ पहुँचने की सम्भावना है।

नागरी हितैषिणी पत्रिका—आरा।

यह पुस्तक अनेक उपयोगी विषयों से युक्त है। आज तक हिन्दूधर्म की शिक्षा देनेवाली जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उन में यही सब से श्रेष्ठ है। ग्रन्थकार ने देवताओं के स्तोत्र के अतिरिक्त धर्म के लक्षण, महत्व, भेद और उपभेदों

का वर्णन इस में सुन्दर रीति से किया है। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दू को अत्यन्त आनन्द और लाभ दे सकती है। अतएव देशहितैषी धार्मिक पुरुषों को उद्योग करना चाहिये कि यह पाठशाला, स्कूल तथा कॉलेज में अवश्य पढ़ायी जाय धर्म रत्न की यह मंजूषा (पिटारी) है इस में कुछ भी सन्देह नहीं। आशा है कि तीसरे सस्करण में यह संध्यावन्दनादि रत्नों से भी सुशोभित हो जायगी।

॥ विनय ॥

इस सम्मतिमाला में बहुत सी सम्मतियाँ प्रकाशित नहीं हो सकीं। किन्तु प्रकाशित तथा अप्रकाशित सभी सम्मतियों के दाता उदार सज्जनों को कोटिशः हार्दिक धन्यवाद।